[ब्रह्म]र्षि हरेराम सुज्ञराम पण्डित कृत ग्रंथमालामणि ९

श्री रामानुजीयमतखण्डनम्

हिंदी भाषानुवादसहितम् ।

प्रकाशकः—
ब्रह्मर्षि हरेराम सुज्ञराम पण्डित
अहमदाबाद.

सं. १९८६ आश्विन शुक्ल विजयादशमी

[द्वि]तीयावृत्तिः] सने १९३१ [प्रत १०००

मुद्रण स्थानः—“उत्कृष्ट मुद्रणालय”
मुद्रकः—पुरुषोतमदास शंकरदास पटेल,
फर्नान्डीझ पूल गांधीरोड—अमदावाद.

मूल्यम् ०-४-०

ब्रह्मर्षि हरेराम सुज्ञराम पण्डित कृत
भाषानुवादसहितग्रंथमालामणि १-१०

T

श्री भगवान् आद्यशङ्कराचार्यः

ब्रह्मसत्यञ्जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।

T

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मर्षि हरेराम सुज्ञराम पण्डित.

सत्यंवद, धर्मंचर, अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
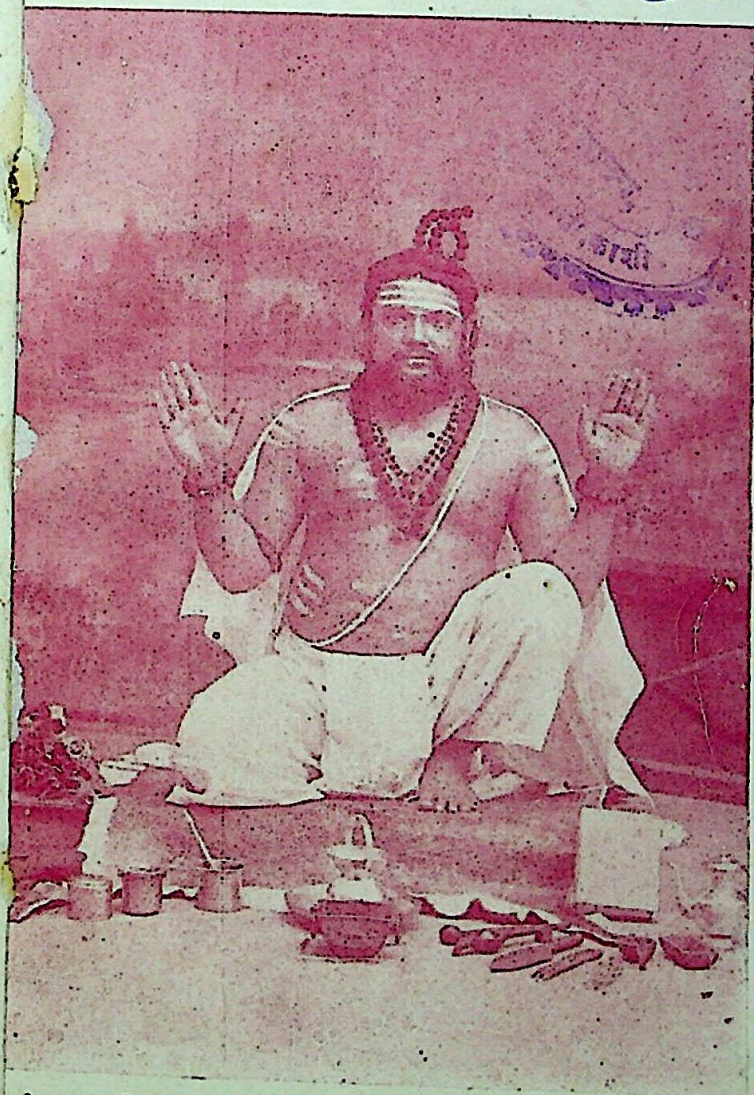
ॐ नमः श्री सहस्र रश्मये ॥

॥ रामानुजीयमतखण्डनम् ॥

॥ निवेद्यम् ॥

अर्थ–निवेदन है ॥

धारणाद्धर्म मित्याहु धर्म्मो धारयते प्रजाः ।
यः स्याद्धारण संयुक्तः सधर्म्म इति निश्चयः ॥

अर्थ–धारणा करने से धर्म कहा जाता है, धर्म ही प्रजाओं की यथावत् स्थिति करता है । जो (धारणा) पालन से युक्त होवै वही धर्मका लक्षण निश्चित है । विशेष–वेद प्रतिप्राद्योऽनुकूलतया वेदनीयो धर्मः । वेदैर्निषिद्ध तया प्रतिपाद्यः प्रतिकूलवेदनीयोऽधर्मः ॥ वेदो में कहा गया आत्म सुख देने वाला धर्म है । और वेदों में निषेध रूप से कहा गया कष्ट देने वाला अधर्म है ॥

सुविदितमेव सर्व्वेषां साधूना मार्य्यावर्त वार्त्तिनाममत्सरिणां यत्साम्प्रतं भारतेऽस्मदीये मिथो विद्वेषं जनयन्त ऐक्यमामूल मुन्मूलयन्तः, श्रद्धा मुत्पाटयन्तश्च श्रौतस्मार्तसंगत मार्गमर्य्यादां विदारयन्तः पाखण्डपदवी मवगाहमानानां

केषांचिद्युक्तिच्छद्म समुच्छालिता वाटा इव मुग्ध जनतामापूरयन्तःप्रलोभनेन परम्परयाऽकर्षयन्तः स्वयमपि स्वकीयं रूपं खण्डयन्ताश्चित्रवाणीवेष भाषा विशेषिता आगमसुरभिं दूरतो वर्ज यन्तोऽपि तदभिख्या प्रमाणादीनि चोच्चैर्घोष यन्तोऽसुसंतर्पणा आडम्बरं प्रकटयन्तो बहवो धर्म्माभासा धर्म्माः प्रचारं लभमाना दरी दृश्यन्त इति–

अर्थः–इस आर्यावर्त पवित्र भूमि के रहने वाले सबकी भलाइ चाहने वाले सब सज्जनों को विदित ही है कि वर्तमान कालमें इस हमारी भारत भूमि में आपस का वैर बढाते एकता की जड उखाडते, श्रद्धाका सत्यानाश करते, श्रौत स्मार्त निरूपित मार्ग मर्य्यादाको विदीर्ण करते किसी पाखण्डियोंकी माया कपट से उभडे हुये मन्दमति जनोंको बहु रूपियों के सदृश प्रलोभन देते हुये अपनी शिष्य परम्परा से आकर्षित करते हैं और आपही आप अपने पूर्व स्वरूपका खण्डन कर रहे हैं ! विचित्र वाग्जाल, स्वरूप रचना भाषासे विशेष प्रतीत होते हैं। सत शास्त्रीय गन्ध को दूरही हटाते हुये आत्म कथित प्रमाणोको उच्चस्वर से घोषणा करते हैं और अपनी तृप्ति के अर्थ आडम्बर प्रकट करतें हैं ऐसे (धर्माभास) धर्मकी तरह माने जाते हुये बहुत धर्म फैले देखे जाते हैं !

प्रस्तावमिममेव पुरस्कृत्य श्रीमतां करकञ्जसम्पुटेऽत्र भवता मयमुल्लेखः प्रमुच्यतेऽवश्यं प्रवीणा विद्वध्धुरीणा आमित भारतीयहितसंवलितं मितं तथ्यंचवचो जातं विना पक्षपातंचेदं स्वीकारिष्यन्ते तत्र नमनागपि संदेहावसरः। सत्य मीमांसकाः सज्जना इत्यलमन्योन्य विकत्थनाऽऽवेशेन।

अर्थः—यही प्रस्ताव लेकर श्रीमन्त आप लोगों के कर कमल में यह उल्लेख दिया जाता है आशा है कि अवश्यमेव कुशल विद्वज्जन इस समस्त भारत के कल्याण कारी थोडे, और सत्य वचन को विना पक्ष पात स्वीकार करेंगे। क्योंकि सज्जन लोग सत्य विचार पर सुदृढ होते हैं तो पुनः ऐसी वैसी वहुत वात कहनेसे क्या है।

न वयं धर्म्माणां संस्थापका विमर्दका वा नूतप्रतानां यन्मुधापरिश्रम मुदरशूलमिवोत्पादयेम, परञ्च स्वतो वाऽन्यतो यद्दग्गोचरी भूतमृतं वस्तु तन्न केवलं ह्यस्मदीयं किन्तु सर्वैरपि विज्ञेयं तथा च सर्व्वेषा मस्मत्सुहृदामिदमित्थमिति बोधनीयं किलेति विचार्य नीतिसम्भृतं मतं

T

संरक्ष्यते जनतासेवायाम्। यथा रुचि स्वीकरणीयम्।

अर्थः—हमलोग धर्म संस्थापक तथा नाशक भी नहीं है जो नवीन विचार वानों को उदर पीडा के सदृश व्यर्थ परिश्रम पहुंचावें, वरन ऐसे है कि जो अपने या दूसरे के द्वारा नेत्र गोचर सत्य वस्तु हुई है वह हमीं भर न जाने किन्तु सब को जानना चाहिये। इस से अपने सब मित्रों को यथार्थ में यह ऐसाही है यह निश्चय बोध करादेने के विचार से जनता की सेवामें नीति युक्त मत स्थापन किया जाता है। सो यथा रुचि स्वीकार करना योग्य है।

प्रस्तुते पुस्तके नाऽस्माभिः कश्चिदप्यंशोलेशमात्रं संवर्द्धितो वा विरचितो न च तस्य रचयितृभिरभिहितं किञ्चिदश्रावि न चात्रसम्मतिप्रदातृषु व्यवस्थापत्रलेखकेषु नियामकेष्वन्यतमोऽक्षिसरणीं समायातो येन चोद्भवेत्कस्यचिदपिमताहतिजन्यपातकः, अथ च यद्यदस्मिन्प्रतिपादितं-तत्तद्दर्शनेनैव व्यावृत्तिमाप्नुयादस्माद्विषयकः कश्चिदपिनइतिभूयोवयं यथातथंमुद्रणया मुद्रयामो मुखमुद्रां भाविप्रतिभटानाम्।

अर्थः—इस पुस्तकमें हमने किसी अंशको लेशमात्र भी नहीं बढाया या रचा और न इसके बनाने वालोंका कथन भी सुना और न सम्मति दाता व्यवस्था पत्र लेखकों मेंसें कोई नियन्ता मेरे सामने आया कि जिससे किसी के मत खण्डनका दोप उत्पन्न होवै। किन्तु जो २ बात इसमें कही गई है उसके देखने सेही यह बात दूर हो जावैगी कि मेरा विषय कुछ नही है। फिर मैनें भावी प्रतिशत्रुओंके मुखबंद करने के अर्थ इसे ज्योंका त्यों मुद्रणकराया है।

पुस्तकमेतद्यदृच्छया दृक्पथं समधिगतंविलोक्य च मनसिकृतं यदिप्रकाशितंस्यादुपकारो भवेन्ममतामतविरहितानां समचित्तानां स्वसनातनवैदिक धर्मपरिपालकानां विदुषामित्यालोच्यतथाकृतम्। स्वमतसंस्थापनाय भूतपूर्व्वा विद्वांसः कां का धोरणीं परिपालयामासुरित्यस्मिन् व्यवस्थापत्रे स्पष्टं प्रतिपादितं दृष्ट्वाचज्ञास्यन्ति सर्वेऽपि वस्तुस्वरूपमेतावतावयंकृतार्थाः। उपक्रमेऽस्मिन्यैर्यैर्महोदयैःसहायःप्रदत्तस्तेषां मंगलमाशास्महे। शमिति।

T

अर्थः—यह पुस्तक अनायास मुझे मिली इसे देखकर मनमें आया कि यदि यह प्रकाशित हाजाय तो जो लोग मत मतान्तर से रहित तथा सम चित्त हैं और अपने सनातन वैदिक धर्म के प्रतिपालक व विद्वान् हैं उनका बडा उपकार होगा यह विचार कर वैसाही किया। अपना मत स्थापन के अर्थ पहिले के विद्वानों ने किन २ मार्गों का अवलम्बन किया यह इस व्यवस्था पत्र में स्पष्ट कहा गया है यह देखकर सबकोई यथार्थ बात जान जावेगें मैं इसी से कृतार्थ होऊंगा। इस उपक्रममें जिन २ महोदयों ने सहायता की है मैं उन्हें मंगलानुशासन करता हूं। इति कुशलम्।

श्री राजनगरात् } ब्रह्मर्षेः
ता. ११-८-१९ } श्री हरेराम शर्म्मणः

T

॥ ॐ नमः श्री सहस्त्र रश्मये ॥

॥ अथश्री

रामानुजीयमतखण्डनम् ॥

हिंदी भाषानुवाद सहितम् ।

जयतिश्रौतधर्म्मार्कः स्मार्तधर्म्मारुणोदयः ॥
सत्पुराणैरुह्यमानः पाखंडध्वांतनाशकः ॥१॥

अर्थः—श्रुति धर्म रूपी सूर्य की जय हो जिसका स्मृति धर्म अरूणो दयहै और जो सत्पुराण रूपी रथद्वारा वहन होकर पाखण्ड रूपी अंधकार को नाश करता है ॥ १ ॥

इदानींबहवो मुग्धाजना रामानुजीयानांदंभमत्याचारंचविलोक्य तै र्विप्रलब्धाःसंतःशास्त्रसम्मतमपिस्वकुलधर्म्ममपहायतन्मार्गे प्रविशन्ति । सच मार्गःश्रुतिस्मृत्यादिमूलविधुरोऽत्यंतनीचजात्युद्भूत पुरुषप्रवर्तित इति । तत्रप्रविष्टा वर्णाश्रमधर्म्माधिकारच्युताभवन्तीति । तेषामेवग्रंथेप्रोक्तातन्मूलपुरुषोत्पत्तिस्तावदुच्यते ॥

अर्थः—इस समय वहुत से (मुग्ध) मूढ लोग रामानुजीयों

के कपट मतिसे भरे हुये आचारको देखकर उनसे लुभायेहुये शास्त्र सम्मत अपने कुलका धर्म छोडकर उनके मार्ग में प्रवेश करजाते हैं। वह मार्ग श्रुति स्मृति पुराणों से विरुद्ध है और अत्यन्त नीच जात्युत्पन्न पुरुषद्वारा फैलाया गया है। इस मार्ग में प्रवेश करने वाले मनुष्य वर्णाश्रम धर्माधिकार से हीन हो जाते हैं। यहाँ उन्हींके ग्रंथों में से कही हुई उनके मूल पुरुषकी उत्पत्ति कही जाती है ॥

श्री निवासाचारिकृतेदिव्यसूरिचरित्रेचतुर्थे सर्गे।

अस्तिपूर्वपयो राशेः कापिपाश्चिमरोधसि। मंडले पांड्यभूपस्य नगरी कुरुकाह्वया ॥ तत्रासीत्पाद्‌जातेषु कश्चिद्भागवताग्रणीः। श्रीमत्पल्लीतिनाडीं-द्रःसीमातीतगुणोल्वणः ॥ तस्य धर्मधरोनामतनयः समजायत। चक्रपाणिस्ततोजातश्चक्रपाणि परायणः ॥ अजायत सुतस्तस्माद्दलदामेति संज्ञितः। सुमतिं सुषुवेसोऽपि सुतंपाटललोचनम् ॥ पुत्रं प्रासूत पार्कारिं पुत्रं पाटललोचनः। कारीति तनयोजातःकारिति राहितस्ततः॥ ततोजातःसुतस्तस्मात् शठकोप इतीरितः। तमाहुः कारिजं संतः शठकोपंपरांकुशं॥ वकुलाभरणाख्यंच तमेव कारिनंदनमिति ॥

T

अर्थः—पूर्व समुद्रके पश्चिम तट पर पांड्य राजा के मंडल में कोई कुरुका नाम्नी नगरी है। तहाँ शूद्रो में कोई भागवत श्रेष्ठ हुआ जिसका नाम पल्ली था और वह बडा गुणी था। उसके धर्मधर नामक पुत्र हुआ। धर्मधर के विष्णु परायण चक्रपाणि नामक पुत्र हुआ। चक्र पाणि के रत्नदामा पुत्र हुआ। रत्नदामा के बुद्धिमान् पाटल लोचन हुआ॥ पाटल लोचनके पार्कारि हुये पार्कारि के कारी नामक पुत्र हुआ। कारी के शठकोप हुए शठकोपको लोग कारिज, शठकोप, पराङ्कुश और बकुलाभरणभी कहेते थे।

अत्र शूद्रः स्यात्पादजोदास इति त्रिकांडशेषकोशे शूद्रवर्गारंभे प्रोक्तत्वात्। पल्लीसंज्ञकस्य शूद्रस्य वंशेजातः शठकोपः सच रामानुजीयमार्गस्य प्रथमप्रवर्तक आद्याचार्य्यः॥

अर्थः—शूद्र, पादज, दास यह त्रिकांडशेष कोशमें शूद्र वर्ग के प्रारंभ में कहा गया है तात्पर्य यह कि पल्ली संज्ञक शूद्र के वंश में शठकोप शूद्र हुये। यही रामानुजीय मत के प्रथम प्रवर्तक आचार्य हुये॥

तथाहि—रामानुजीयानां गुरुपरंपरायामुक्तम्—
अस्मद्देशिकमस्मदीय परमाचार्यानशेषान्गुरून्।
श्री मल्लक्ष्मण योगिपुंगवमहापूर्णंमुनिं यामुनम्।
रामंपद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणं॥

सेनेशंश्रियमिद्धिरासहचरं नारायणं संश्रय इति॥ अत्र पूर्वं स्वकीय गुरुं परमगुरु परात्पर गुरु प्रभृतीं श्चाश्रित्य रामानुजप्रभृतीन् क्रमेणाश्रयतितदुपासकः। तत्रलक्ष्मणयोगिपुंगव इति रामानुजस्य संज्ञाकृता। रामानुजस्य गुरुर्महापूर्णः तस्य गुरुर्यामुनः यामुनस्य राम इत्येवं क्रमोज्ञेयः। पद्म विलोचन इति पुण्डरीकाक्षस्य संज्ञा. शठद्वेषीति शठकोपस्य संज्ञा अयमेवास्यमार्गस्य मनुष्येषु प्रथम प्रवर्तक इत्यस्मादेव श्लोकान्निश्चियते। अनंतरंचसेनेशो विश्वक्सेनः श्रीर्लक्ष्मीः नारायण श्चेत्यंते. त्रयोदेवविशेषास्तेषां चरित्रंचार्षग्रंथ संमतमेवप्रमाणं नान्येनोक्त मिति। शठकोपांतैवेयं परंपरेति।

अर्थः—सोई वात रामानुजीय गुरु परंपरामें कथित है। मेरे आचार्य परमाचार्य अशेष गुरुओंको तथा योगिवर रामानुजको तथा महापूर्ण तथा यामुन तथा राम तथा पद्मलोचन तथा शठकोप तथा विश्वक्सेन, लक्ष्मी और नारायण को मैं सेव्य मानता हूं। इस श्लोक में उपासक पहिले आत्मगुरु फिर परमगुरु परात्परगुरु आदिका आश्रय करके क्रमसे रामानुजका

आश्रय करता है । तिसमें लक्ष्मण योगि पुंगव यह रामानुजकी संज्ञाहै । रामानुज के गुरु महापूर्ण महापूर्ण के गुरु यामुन यामुन के गुरु राम ऐसा क्रम जानना पद्म विलोचन यह पुण्डरीकाक्ष का संज्ञा है और शठद्वेषी यह शठकोपकी संज्ञा है यही इस मार्गके मनुष्योंमें प्रथम संचालक हुए यह इस श्लोकसे निश्चय होता है । अनंतर सेनेश विश्वकसेन श्री लक्ष्मी और नारायण ये तीन देव हैं । इनका चरित्र ऋषि प्रणीत ग्रंथ संमतही प्रमाण है दुसरेका कहा नहीं है । शठको-पान्त ही यह परम्परा है ।

उक्तंच—श्रीमान् वेङ्कटनाथाचार्य्यः कवि तार्किक केसरी । वेदांताचार्यवर्योमे सन्निधत्तांसदाहृदि ॥ २ ॥ वेदांताचारि कृतायां दिव्यसूरिप्रभाव दीपिका-यांच—परः पद्माभर्त्तुः प्रथम पतिरन्यावयववान् । प्रपत्तौभक्तौच प्रतिनियतचित्तःकविवरः ॥ हरि-र्नित्यो यद्वाजनिमदवरोदेशिकवरः । प्रतीतःपूज्यो सावमृतइहवेदातिगमतिरित्यत्र असौ शठकोप इहजगति पूज्य इत्यन्वयः । अन्यत्सर्वं शठकोप-स्य विशेषणम् । प्रथम पतिरिति मार्गस्यप्रथमः प्रवर्तक इत्यर्थः ॥ अतएववदेशिकेष्वाचार्येषु वरः

श्रेष्ठ इत्यर्थः । अन्त्यावयववानिति—अन्ये भक्ति सारादयोद्वादश-आलवारसंज्ञका रामानुजीयाना-माचार्या अवयवाःसंति यस्य सोऽन्यवयववान् ।

अर्थः—कहा भी गया है। कवि तथा तार्किको में सिंह वेदान्ताचार्य श्रेष्ठ श्रीमान् वेङ्कट नाथाचार्य मेरे हृदय में सदा वास करैं। वेदान्ताचारि रचित दिव्यसूरि दीपिका में भी कहा है। मार्ग के प्रथम प्रवर्तक भक्ति सारादिक १२ जिनके अंगथे नारायण के नमन और भक्तिमें जिनका चित्त नियत था कवियें में श्रेष्ठ ये नित्य हरि ही थे किम्वा अन्तिम जातीय आचार्य थे। संसार में जिनकी मति वेद को भी अति क्रमण करती थी ऐसे शठकोप संसार में पूज्य और विश्वास पात्र अमृत हैं। श्लोक व्याख्या—यह शठ कोप जगत में पूज्य हैं ऐसा अन्वय है। अन्य सब शठकोप ही के विशेषण हैं। प्रथम पति का अर्थ मार्ग का प्रथम संचालक है। इसीसे देशिक वर आचार्यों में श्रेष्ठ यह अर्थ है अन्यावयववान् इसका अर्थ भक्ति सारादिक १२ आलवार संज्ञक रामानुजीयों के आचार्य जिनके अंग हैं सो अन्यावयववान् हुआ।

भक्ति सारादयोऽपिनीचजातीया एव। तथाहि—दिव्यसूरि चरित्रे द्वितीयसर्गे ५२ श्लोके भक्ति सारस्य स्वरूपवर्णनम्।विचक्षणो विश्वविमोहहेतोः

कुलोचिताचार कलानुषक्तः। पुण्ये महीसारपुरे विधाय विक्रीयशूर्पं विचचार योगीति ॥ एवं भिल्लजातीयः परकालः चांडालजातीयो मुनि वाहन इत्याद्यन्येषामपि वर्णनम् । तस्मिन्नेवग्रंथेतैः कृते भार्गवपुराणे प्रपन्नामृतेंचद्दष्ठव्यम्।

अर्थः—भक्ति सारादिक भी नीच जाति ही हैं। देखो दिव्य सूरिचरित्र द्वितीय सर्ग के ५२ वें श्लोक में भक्तिसार का स्वरूप वर्णन है। बुद्धिमान् कुलके चालू आचार कलामें संलग्न संसार के मोहन के अर्थ पवित्र महीसार पुर में सूप वना वेंचते हुये योगी विचरते थे। इस प्रकार भिल्ल जातीय, परकाल चाण्डाल जातीय मुनिवाहन इत्यादि कोंका तथा दुसरों का भी वर्णन है। सो उसी ग्रंथ में उन्हीका कृत भार्गव पुराण तथा प्रपन्नामृत में भी देखना।

पुनर्वेदांताचारिणा, नित्योऽथ मुक्त उततद्गुणको मुमुक्षु र्व्यासादिवद्भगवताकिमनुप्राविष्टः। अत्र्यादिसूनुरिहवर्णयुगक्रमात्किमासीत्पुराणपुरुषः शठवैरियोगी, त्याचार्योक्तेरित्युक्तम् ॥ अत्रवर्णक्रमो युगक्रम श्चेतिद्विविधः क्रमः कृते ब्राह्मणस्यात्रेः पुत्रो दत्तात्रेयस्त्रेतायां क्षत्रियस्य दशरथ-

स्य पुत्रो रामः द्वापरं वैश्यस्यनंदस्य पुत्रःकृष्णः। कलौच शूद्रस्य कारिणः पुत्रः शठकोप इति स्पष्टमायाति ॥

अर्थः—पुनः वेदान्ताचार्यने कहा है नित्य मुक्त हुये और भगवद्गुणों से युक्त हुये मुमुक्षु हुये क्या व्यासादि के समान भगवान् का अवतार ही था किम्वा दत्तात्रेयादि की भाँति युगानुरूप वर्णको धारण करते शठकोप योगी पुराण पुरुष ही थे। यह आचार्य ने ही कहा है। इसमें वर्णक्रम और युग क्रम दो प्रकारका क्रम है। सत्युग में ब्राह्मण अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय हुये त्रेता में क्षत्रिय दशरथ के पुत्र राम हुये द्वापर में वैश्य नंद के पुत्र कृष्ण हुये कलियुगमें शूद्र कारि के पुत्र शठकोप हुये यह वात स्पष्ट ही है ॥

नेतुं द्राविड़तां वेदानत्रैवर्णिकतां गतः। मद्भक्तः शठकोपाख्यो भविष्यति मदिच्छया; इत्युदाहरणेच त्रैवर्णिकातिरिक्त एवात्रैवर्णिक इतिस्पष्टम्। अस्य तुरीयवर्णावतारोऽपिनाचार्यत्वभंजकः।तुरीयवर्णो भगवत्पादजन्मकृत सकलेतरवैलक्षण्ययुक्तः परंपरायाः प्रथमप्रवर्तकत्वात्। गुरुपरंपरामध्येप्यस्यैव निवेश इत्यादिवेदांताचारिणाबहुशः

सिद्धांतितत्वात् । विस्तरावलोकनेच्छाचत्तत्कृत-दिव्यसूरिप्रभावदीपिकायांदृष्टव्यम् ।

अर्थः–वेदों को द्राविड वेद बनाने के अर्थ शूद्रतांको प्राप्त मेरा भक्त शठकोप नामक कलिकाल में मेरी इच्छा से होगा । इस उदाहरण में भी तीन वर्ण से जो अलग है वही अत्रैवर्णिक अर्थात् शूद्र हुआ यह स्पष्ट है इनका चतुर्थ वर्णावतार भी आचार्यताका निषेध कारक नहीं है । चतुर्थ वर्ण में होते हुये भी भगवान का अवतार होने के कारण दूसरे शूद्रों सें वीलक्षण थे और गुरु परंपरा के प्रथम संस्थापक थे । गुरु परम्परा में इन्हीं की प्रवर्तकता है इत्यादि वेदान्ताचार्य रामानुजने वहुत सिद्ध किया है । विस्तार देखने की इच्छा होतो तन्निर्मित दिव्य सूरि प्रभाव दीपिका गें देखना ।

यद्यपि–क्वचिदत्राभिजायंतेयोगिनः सर्वयोनिषु । प्रत्यक्षितात्मनाथानांनैषां चिन्त्यं कुलादिकमिति-तेनोक्तम्–तथाप्यस्यश्लोकस्यार्षत्वाभावात्तद्रचितभारद्वाजसंहितास्थत्वात् ॥ शुचीनांश्रीमतांगेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते;इत्याद्यार्षशास्त्रविरोधादप्रामाण्यमेव । यद्यपिच भागवतादिषु–त्यक्त्वास्वधर्म्मं चरणाम्बुजंहरे र्भजंस्तथा च सलिंगानाश्रमां-

स्त्यक्त्वाचरेदविधिगोचर इत्यादिषु वर्णाश्रमा नादरःश्रूयते ॥ तदपि, वर्णाश्रमाचारवतापुरुषेण परःपुमान्। विष्णुराराध्यते पंथानान्यस्तत्तोष कारणम् ॥ सगरंप्रत्यन्यत्र वाक्यंच—वर्णाश्रमेषु ये धर्माःशास्त्रोक्तानृप सत्तम। तेषुतिष्ठन्नरोविष्णुमा- राधयतिनान्यथा। इत्यादि विष्णु पुराणीय ३ अंशस्य ८ अध्यायस्थ वचनविरोधात्।

अर्थः—यद्यपि—कहीं २ योगी लोग सब योनियों में उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हों ने अपने स्वामी को प्रत्यक्ष कर लिये हैं उनके कुलादिका विचार नहीं करना चाहिये। यह उन्होंने कहा है तो भी यह श्लोक ऋषि प्रणीत नहीं है किन्तु इन्हीं लोगों से कल्पित भारद्वाज संहिता में है। योग भ्रष्ट जन शुचि पवित्र वंश में अथवा श्रीमन्तों के यहां अथवा योगी ही के कुल में उत्पन्न होते हैं इत्यादि ऋषि वचनों के विरोध से प्रमाण योग्य नहीं है ॥ यद्यपि भागवतादि में—अपना धर्म त्या- गकर हरिका चरण कमल भजन करना तथा सलिंग आश्रम को छोड़कर गुप्त होकर विचरै इत्यादि वाक्यों में वर्णाश्रम का अनादर सुना जाता है; तो भी वर्णाश्रम वाला पुरुष परम पुरुष विष्णुका आराधन करै दूसरा मार्ग नहीं है। इत्यादि विष्णु पुराण ३ अंश अध्याय के वचन का विरोध पड़ता है ॥

तच्च ये दैवाद्वर्णाश्रमाधिकारच्युताव्रात्य पतिता-दय आधुनिकमार्गावलम्बनरूपदोषरहिताःसंतो भगवद्भक्तिं कुर्वंतितेषां प्रोत्साहन परमेव। अथ-वायस्तु कर्मफलत्यागीसत्यागीत्य भिधीयत इत्यादि भगवद्वचनात्तदभिमान त्याग मात्रं तत्र विवक्षितं नचस्वरूपत एवधर्मत्यागः।किंचतेषु वचनेषु आधु-निक मार्गाश्रयणाभ्यनुज्ञानोपलभ्यते। विष्णु-पुराणेच तेषु तिष्ठन्निति—वर्णाश्रम धर्मेषुस्थिति-रेव विष्ण्वाराधनमित्युक्तम्, नचान्यस्य धर्मां-तरस्यानुष्ठानापेक्षाकृता प्रत्युत नान्यःपंथास्तत्तोष कारणमिति मार्गांतराश्रयणस्यनिषेधः स्पष्ट-तयाकृतः ॥

अर्थः—तिस भागवतादि वाक्य की सार्थकता इस प्रकार है कि दैव योगसे जो पुरुष वर्णाश्रम से च्युत या व्रात्य तथा पतित हो गया है और आधुनिक मार्गावलम्बन दोष से वचते हुये भगवानकी भक्ति करता है उसके उत्साह वढाने के अर्थ है। अथवा जो कर्म फल का त्याग करता है वही त्यागी कह-लाता है ऐसा भगवद्वचन होने से वर्णाश्रम धर्म का अभिमान त्याग मात्र विवक्षित है स्वरूप से धर्म का त्याग नहीं किञ्च

उन भागवतादि वचनों में आधुनिक मार्गावलम्बन की आज्ञा नहीं है। विष्णु पुराण में भी तेषुतिष्ठन्, इस वचन से वर्णाश्रम धर्म ही में रहना विष्णुका आराधन है ऐसा कहा है दूसरे धर्म को आराधन करना नहीं कहा उलटे यह कहा कि विष्णु की प्रसन्नताका वर्णाश्रम धर्म छोड दूसरा मार्ग नहीं है। यह दूसरे मार्ग का निषेध स्पष्ट ही है।

एवमाधुनिक मार्ग प्रविष्टा ये भगवन्नाम ग्रहणं कुर्वंति तदपि तेषां निष्फल मेव नाम माहात्म्येष्वाधुनिक मार्गप्रवेशानुज्ञाऽभावात् (अजामिलादीनामाधुनिक मार्गाश्रयणाश्रवणात) तदुक्त नामापराधग्रस्तत्त्वाच्चास्वीकृताऽधुनिकमार्ग परमेव नाममाहात्म्यमित्यलं पल्लवितेन । तस्माच्छठकोपादिनीचजातिप्रवर्तित श्रुतिस्मृत्यादि विरुद्धाधुनिक मार्गे प्रविष्टा रामानुजीयानिष्फलश्रमा वर्णाश्रम धर्माधिकारच्युता भवंतीति सिद्धम्॥

अर्थः–इसी प्रकार जो आधुनिक मार्ग में प्रविष्ट होकर भगवन्नाम ग्रहण करते हैं वह निष्फल ही है क्योंकि नाम माहात्म्य में आधुनिक मार्ग प्रवेश की आज्ञा नहीं है (अजामि-

लादिकभी आधुनिक मार्ग के प्रवेशसेही मुक्त हुये यह नहीं सुना जाता) अतः इस आधुनिक मार्ग द्वारा लोगों का भगवन्नाम ग्रहण करना निरर्थक ही है। जिन्होंने इस मार्गका आश्रय नहीं किया उनके ही अर्थ यह नाम माहात्म्य है यह सिद्ध हुआ विस्तार से क्या है। अतः शठकोपादि नीच जाति से प्रचलित श्रुति स्मृति विरोधी आधुनिक मार्ग में प्रविष्ट रामानुजीयों का नाम ग्रहण रूप श्रम व्यर्थ है और ये वर्णाश्रम धर्म से भीच्युत हैं यह सिद्ध हुआ।

एतेन रामानुजार्यीनामाचारस्य शास्त्रमूलकत्व शंका दूरतोऽपास्ता; नहि शूद्रात्प्रथमंप्रवृत्तःकोऽपि धर्मः शास्त्र मूलको दृष्टः। सर्वस्यापि धर्मस्य वेद मूलकत्वात्। शूद्रस्यच वेदश्रवणमात्रस्याप्यधिकाराभावात्। अतो रामानुजीया यानि वाक्यानि स्वकीयाचारे प्रमाणभूतानिवदंति तानिसर्वाण्यपि कल्पितानि सर्वथा निर्मूलान्येवेति सुधी भिरवधेयम्।

अर्थः—इससे रामानुजीयों का आचार शास्त्र मूलक है यह शंका दूरही है। सबधर्म वेद मूलक होने से शूद्रों करके पहले पहल चलाया कोइ धर्म शास्त्र मूलक नहीं कहा जासक्ता।

क्योंकि शूद्रों को तो वेदका श्रवण मात्र निषेध है। इससे रामानुजीय लोग जिन २ वचनों को निज मत में प्रमाण मानते हैं वह सब कल्पित और निर्मूल हैं यह सब विद्वानों के जानने योग्य है ॥

एतच्चास्माभिर्बहुतर यत्नेनैतेषां ग्रंथान् संपाद्य यत्र यत्रार्ष नाम्नालिखितं वचनं दृष्टं तस्य तस्यान्वेषणं बहु पुस्तकेषु कृतम् नतु कुत्राचिद्रामानुजीया चारानुकूलवचनस्य लेशोऽप्यार्ष शास्त्रेषु-दृष्टः किंतु कैश्चित्पाखंडिभिः कल्पिताःकतिचिद्ग्रंथाः शिवब्राह्मणमुनिशास्त्रादीनां निन्दापराः संति तेष्वेवैतेषां धर्म प्रतिपादकानिवचनान्युपलभ्यंते नान्यत्र ॥ तेग्रंथास्तु वशिष्ठस्मृतिः, हारीत स्मृतिः, पराशरस्मृतिरित्यादयः स्मृतयः। पद्मपुराणीयोत्तरखंडप्रभृतीनि पुराणानि । भारद्वाज संहिता, परमेश्वर संहितादयःसंहिता इत्येवं विधाबहवो ग्रंथाएतैः कल्पिताःप्रचरंति।

अर्थः—यह वात हम लोग बडे प्रयत्न से उनके ग्रन्थ प्राप्त करके जहाँ जहाँ आर्ष नाम से वचन लिखा देखे उन २ वचनों को ऋषि प्रणीत बहुत पुस्तकों में ढूंढा तो रामानुजीय

मतके अनुकूल वचनों का लेश मात्र भी किसी आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिला किन्तु हां कुछ ग्रन्थ पाखंडियों करके कल्पित है जिनमें शिव ब्राह्मण मुनि शास्त्रोंकी निन्दा है उन्हीं ग्रंथो में उनके धर्म प्रतिपादक वचन मिलते हैं अन्यत्र नहीं। ग्रंथ नाम वशिष्ठ स्मृति हारित स्मृति पराशर स्मृति इत्यादि स्मृति पद्म-पुराणोत्तरखंड प्रभृति पुराण, भारद्वाज संहिता परमेश्वर संहिता प्रभृति संहिता इत्यादि बहुत ग्रंथ इन लोगों के कल्पित फैले हैं।

सत्याआपि वसिष्ठादि मुनिप्रोक्ताःस्मृतयउपल-भ्यंते। तत्रैतैःकल्पितेषुग्रंथेषु शिवब्राह्मणादीनां निंदावै तदीयधर्मस्य प्रशंसानास्ति। सत्येषुतु केवलं वर्णाश्रमादि धर्म मात्रस्य प्रतिपादनमस्ति ह्येतदीय धर्मस्य गंधोऽपिनास्ति। अतएतैरुदा-हृतंवचो जातमुपलभ्य सद्भिःसहसा प्रामाण्य-ग्रहोनकार्यः, किंतु कुत्रत्यमेतदिति पूर्वंतस्य मूलान्वेषणं कर्तव्यं कृते च मूलान्वेषणे कृत्रिम ग्रंथस्थमेव तद्भविष्यति। आर्षग्रंथस्यचार्थप्रक-रणादिभिरन्यार्थमेवेति निश्चयः।

अर्थः—सत्य (असली) भी वशिष्ठादि मुनि प्रोक्त स्मृति पाईजाती हैं तिसमें अन्तर यह है कि रामानुजीयों के कल्पित

ग्रंथो में शिव ब्राह्मणादिकों की निन्दा है किन्तु कहीं प्रशंसा इनकी नही है। और सत्य स्मृतियो में वर्णाश्रमाचार मात्र का कथन है रामानुजीय धर्म का गंध मात्र नहीं है। इसीसे इन लोगों से कथित वचन सुनकर सज्जन लोग सहसा प्रमाण न मान लेवें। किन्तु कहीं का यह वचन है उसके मूल का पता लगावें पतालगाने पर वह तन्निर्मित ग्रंथो काही पाया जावेगा। आर्ष ग्रंथ का वचन अर्थ प्रकरणादि से आप ही ज्ञात होगा यह निश्चय है ॥

इदानीं धर्मेप्रमाणभूतानां शास्त्राणां कृत्तिम-ग्रंथैः संकीर्णत्वात् तन्निर्द्धारणोपायउच्यते; यावतो-वेदस्यतदंगोपांगानांच सोपबृंहणानामध्ययना-ध्यापने प्रचुरव्यवहारो वर्तते येषांचसर्वैःप्रामाण्य-त्वेनांगीकृताव्याख्यास्ति तत्रतु संदेहोनास्त्येव तदितरत्सर्वं संदेहास्पदमेव संदिग्धंयच्चासंदिग्धा-द्विलक्षण धर्मप्रतिपादकं तत्कृत्रिममेवेतिनिश्चयः।

अर्थः—अब हम धर्म में प्रमाण भूत शास्त्रो में जो नवीन रचना करके लोगों ने मिलादियेहै उनके निश्चय करने अ-र्थात् नया पुराना जानने का उपाय बतलाते हैं। जितने वेद और उनके अंग उपाङ्ग शिक्षादिके पढने पढाने में अधिक

प्रचार हो रहा है और जिनकी व्याख्याकारोंने प्रमाण मान कर टीका की हैं उनमें संदेह नहीं है उनसे भिन्न संदिग्ध ही हैं, जो संदिग्ध है और असंदिग्धसे विलक्षण धर्म को कहता है वह नवीन रचित ही जानना चाहिये।

प्रकृतेतु रामानुजमते तन्मतस्याद्याचार्य्यैः शठकोपादिभिःपूर्वं स्वभाषायामेव ग्रंथंनिर्माय स्वशिष्या उपदिष्टाःसचग्रंथो द्रविडभाषायामेवास्तितदनुयायिभिस्तुतस्य द्रविड़वेदसंज्ञया व्यवहारः क्रियते। पश्चादुत्तरोत्तरमुत्तमजात्युद्भूता अपितन्मतप्रविष्टाबभूवुः तेचाधीत्याधीत्यसंस्कृतेऽपिव्युत्पन्नाभूत्वा द्रविड़वेदस्यसंस्कृत भाषायां व्याख्यांचक्रुःसाच व्याख्यातदनुयायिभिर्द्रविड़भाष्यसंज्ञयाव्यवह्रियते। अनंतरंच श्री भाष्यप्रभृतयोबहवोग्रंथा स्तन्मतपोषकास्तैर्निर्मिताः। किंचआर्षशास्त्रेषुतन्मतस्यमूलमनुपलभ्य मूलारोपणार्थं बहवोग्रंथा आर्षनाम्नारचितास्तेषुच विशेषेणपरिशीलित श्रुतिस्मृतिनां सत्यत्वभ्रमोजायतेऽतःपाखंडभीरुभिः पूर्वोक्तप्रकारेणतेषांनिर्द्धारणंकर्तव्यम्।

अर्थः—इस रामानुज मत में उस मत के प्रथम आचार्य शठकोपादिकोंने पहले अपनी भाषा में ग्रंथ बनाकर अपने शिष्यों को पढाया: वह ग्रंथ पहले द्रविड भाषा में था उनके अनुयायी लोग उस ग्रंथ को द्रविड वेद नाम से व्यवहार करने लगे । पीछे धीरे २ उत्तम जातिके लोगभी उस में प्रविष्ट हुये और पढ २ कर संस्कृत में पण्डित हुये तव उन लोगों नें द्रविड वेद की संस्कृत में व्याख्या किया और उस व्याख्या को । द्रविड भाष्य कहने लगे । इसके पीछे श्री भाष्य प्रभृति वहुत ग्रंथ स्वमत पुष्ट करने के लिये वना डाले । किन्तु आर्ष प्राचीन ग्रंथों में उनके मत पोषक कोई मूल वातनहीं मिलती थी तव जडजमाने के लिये वहुत से ग्रंथ ऋषियों के नाम से वनाये । जिसमे विशेषकर श्रुति स्मृति पढने वालोंको भी सत्य होने का भ्रम हो जाता है । अतःपाखंडियों से वचने वालों को पूर्व कहे हुये मार्ग से छान वीन करना चाहियें ।

अथैतैर्लिखितानि शिवमुनिब्राह्मणादिनिंदावाक्यानि यथाचैतैर्निर्मितायां वसिष्ठस्मृतौ-तापादि पंचसंस्कारा महाभागवताःस्मृताः।चक्रादिहेतिभिस्तसंतापइत्यभिधीयते ॥ संस्कारःप्रथमःप्रोक्तो द्वितीयःपुंड्रधारणम् । तृतीयोनामकरणं वैष्णवंपावनंपरम् ॥ सार्थज्ञानं चतुर्थस्तु मन्त्राध्ययनमुच्य

ते। पंचमस्तुहरेः पूजा पंचरात्रोक्तमार्गतः॥ तदी-
यार्चनपर्यंतं हरेराराधनं स्मृतम्। इत्येवमादि-
संस्कारो महाभागवतः स्मृतः॥ अन्येत्ववैष्णवाः
प्रोक्ता हीनास्तापादिभिर्द्विजाः। तथाह्यवैष्णवाः-
ज्ञेयाः प्राकृताः पापकारिणः॥ वादशास्त्रेषु निपु-
णास्तेवैनरकगामिनः। अवैष्णवत्वं विप्राणांमहा
पातकसंज्ञितं॥ अवैष्णवस्तुयोविप्रः सर्वकर्मसु
गर्हितः। रौरवं नरकं प्राप्य चांडालींयोनिमाप्नु
यात्॥ चतुर्वेदीचयोविप्रोवैष्णवं चेन्नविंदति।
वेदभारभराक्रांतः सवैब्राह्मणगर्दभः॥ पाखंडि
नंच पतितमुन्मत्तं शवहारिणम्। अवैष्णवंद्विजं-
स्पृष्ट्वा सवासाजलमाविशेत्। चक्रादिचिह्नहीनेन
स्थाप्यते यत्र कर्मणि। नसान्निध्यं हरिर्याति क्रि-
याकोटि शतैरपि॥ अवैष्णवस्थापितानां प्रति-
मानांचवन्दनम्। यः करोति समूढात्मा रौरवं
नरकं व्रजेत्॥ शूद्रादीनांतुरुद्राद्याअर्चनीयाःप्रकी
र्तिताः। रुद्रार्चनं त्रिपुंड्रंच यत्पुराणेषु गीयते। तद-
ब्राह्मण्यविषयमेवमाहप्रजापतिः। तस्मात् त्रिपुंड्रं

T

विप्राणां न धार्यं मुनिसत्तमाः ॥ यद्यज्ञानात्तं बिभ्रियुः पतितास्तेनसंशयः । अवैष्णवस्तुयोविप्र श्चांडालादधमः स्मृतः ॥ नतेन सह भोक्तव्यमापद्यपि कदाचनेत्यादिना ।

अर्थः—इन लोगों से रचित शिव, मुनि, ब्राह्मणादिकों कीं निन्दा इन के ही वनाई वसिष्ठ स्मृति मे है कि—तापादि पांच संस्कार जिन के हुये हैं वही महा भागवत हैं । चक्रादि आयुध से तपाना ही ताप है । ताप प्रथम संस्कार है दूसरा संस्कार पुंड्र धारण है । तीसरा संस्कार वैष्णवनाम धरना है चतुर्थ संस्कार अर्थज्ञान के सहित मंत्र जपना । पंचम संस्कार पंच रात्र की रीति से पूजा करना है और भक्तों की पूजा पर्यन्त हरिका आराधन है । इत्यादि संस्कार रखनेवाला महाभागवत है ॥ शेष ब्राह्मण जिनका तापादि संस्कार नहीं हुआ वे अवैष्णव हैं । जो तापादि रहित अवैष्णव हैं वह तुच्छ और पापकारी हैं ॥ वे वादाविवाद में निपुण नरक में जाते हैं । ब्राह्मणों को अवैष्णव होना महा पाप है । अवैष्णव ब्राह्मण सवकर्मों में निन्द्यहै वह रौरव नरक में जाकर चांडाली योनि पाता है ॥ ब्राह्मण चाहे चारों वेद क्यों न पढा हो यदि वह वैष्णव नहीं है तो वेद का भार ढोने वाला गर्दभ है । पाखंडी, पतित, मतवाला, शव हारी और अवैष्णवद्विज को छूकर वस्त्र सहित जलमें डूवै (तव पवित्र होता है)।

चक्रादि चिन्ह रहित जन द्वारा जो प्रतिमा स्थापित की जाती है चाहै कोटिउपाय क्यों न करै उसमें हरि का वास नहीं रहता अवैष्णव स्थापित मूर्तिकी जो वन्दना करता है वह मूर्ख रौरव नर्क को जाता है ॥ रुद्रादि का अर्चन शूद्रों के लिये कहा गया है। रुद्रार्चन व त्रिपुंड्र धारण पुराणों में कहा गया है वह ब्राह्मण से भिन्नजाति के लिये है यह प्रजापतिने कहा है। अतः हे मुनियो त्रिपुंड्र धारण ब्राह्मणोंको न करना चाहिये। यदि अज्ञान से त्रिपुंड्र लगावें तो पतित हो जाते हैं। अवैष्णव ब्राह्मण चांडाल से भी अधम है। उसके साथ आपत्ति में भी कदापि भोजन न करना चाहिये ॥

एषांहारीत स्मृतौच—चक्रादिचिन्हराहितं प्राकृतं कलुषान्वितम्। अवैष्णवंतु तंदूराच्छ्वपाकमिव संत्यजेत्। रुद्रार्चनाद्‌ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतांव्रजेत्। नभस्म धारयेद्विप्रः परमापद्गतोऽपिवा ॥ मोहाद्वैविभ्रियाद्यस्तु स सुरापो भवेद्ध्रुवमित्यादिना;

अर्थः—इनकी हारीत स्मृति में भीकहा है—चक्रादि चिन्होंसे रहित प्राकृत पापी अवैष्णव को चाँडाल की तरह त्यागना चाहिये ॥ ब्राह्मण रूद्रार्चन से शूद्र के बराबर हो जाता है। ब्राह्मण आपत्ति में भी भस्म धारण न करै यदि

मोह से धारण करै तो वह निश्चय मद्यपी हो जाता है इत्यादि—

एतेषां पराशर स्मृतौच—विना यज्ञोपवीतेन विना चक्रस्य धारणात्। विना द्वयेन वै विप्रश्चांडालत्वमवाप्नुयात् ॥ अचक्रधारिणं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति। रेतोमूत्रपूरीषादि स पितृभ्यःप्रयच्छाति। शंखचक्रोर्ध्वपुंड्रादि रहितोब्राह्मणाधमः। सजीवन्नेव चांडालः सर्वधर्म बहिष्कृतः॥ इत्यादि ॥

अर्थः—इनकी पराशरस्मृति में भी कहा है कि—बिना यज्ञोपवीत, विनाचक्र धारण और विनाद्वय मंत्र के ब्राह्मण चांडालता को प्राप्त होता है। विना चक्र धारी विप्र को जो-श्राद्धमें भोजन कराता है वह अपने पितरों को वीर्य मूत्र विष्ठा देता है। जो शंख चक्र ऊर्ध्वपुण्ड्र विना है वह अधम जीताही चँाडाल है और सब धर्मों से वाह्य है।

येचैतेषां पाखंड शास्त्राणां प्रामाण्यमधिगच्छंति। ते कथं च्चिच्छूद्र शिष्यत्वगर्हामगणयित्वाऽपि चक्रादि धारणं कृत्वा स्वस्य चांडालत्वं दूरीकुर्वंतुनाम किंत्वेतद्धर्मस्य स्वल्पकालावधि

प्रचलितत्त्वात्; मृत पूर्व पुरुषाणां तद्धारणाभावादिदानीं धारयितुमशक्यत्वाच्च, तेषां चांडालत्वमेवांगी कार्यस्यात्। तथाचसति, चांडालानां संततयएवएते इदानीं तप्तचक्रादि धारणेन ब्राह्मणोत्कृष्ट जन्माभवंतीत्यत्याश्चर्यं पर्यवसानं भवति।

अर्थः—जो लोग इन पाखंडियों के रचित ग्रंथों को प्रमाणभूत मानते है और शूद्र के शिष्य होना रूप निन्द्य कर्म की उपेक्षा करके चक्रादिचिन्हों से भूपित बनते है उन्हें अपनी चांडाल ता दूर करनी चाहिये क्योंकि यह धर्म थोडे ही काल से चला है। उनके स्वर्गीय पूर्व पुरूष इस धर्म में नहीं गये थे तब उनकी संतान को भी इसे धारण नहीं करना चाहिये। यदि धारण किया तो अपने पूर्वजों को (अवश्य) चांडाल बनाया। यदि वे चांडाल बने तो उनकी संतान चक्रादि लांछित होकर अपने को ब्राह्मण से भी उत्कृष्ट समझने लगी तो यह बडा ही आश्चर्य है।

वस्तुतस्तु द्वादशाध्याये ९५ श्लोके मनुः—
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः। सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठाहिताः स्मृताः।

उत्पद्यंतेच्च्यवंते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्। तान्यर्वाक्कालिकतयानिष्फलान्यनृतानिचेति ॥ प्रेत्य तमो निष्ठाःपरलोकेनरक निष्पादकाइत्यर्थः। तस्मान्मन्वादिभिर्निषिद्धान्याधुनिकवचनानि न-रकभीरुभिर्हेयान्येव ।

अर्थः—यथार्थ देखिये तो—१२ अध्याय मनु श्लोक ९८ जो स्मृति वेद से वाह्य हैं और जो कुछ कुरीतियाँ है उन उनका परिणाम परलोक में भी निष्फल है क्योंकि अज्ञान से भरी हैं ॥ इस प्राचीन वेद मार्ग से भिन्न जो कोई धर्म हैं वह उत्पन्न होते हैं और नष्ठ भी हो जाते हैं। उन्हें आधुनिक होने से निष्फल व मिथ्या जानना चाहिये अर्थात् परलोकमें नरक प्रद हैं ॥ इस से मन्वादिकों से वर्जित आधुनिक वचनों को नरक से वचने की इच्छा से त्याग करे ॥

किंच एतैःकल्पितेषुग्रंथेषु श्रुति स्मृति पुरा-णादिभिः परमाराध्यत्वेन प्रतिपादितस्य भगवतः शिवस्यापूज्यत्वप्रतिपादनंदृश्यते । स्वयंत्वेते शूद्रसूर्पकाराभिल्लचांडालादिजातीयानां,शठकोप भक्तिसारपरकाल मुनिवाहनादीनांद्वादशानामा-ळवार संज्ञया प्रसिद्धानां तन्मतप्रवर्तकानामाद्या-

चार्य्याणांप्रातिमास्थापनपूर्वकं पूजनं तदुच्छिष्ट भोजनं च कुर्वंति । तत्र प्रमाणंच; एतैः स्वमतानुसारेणैव दिव्यसूरिप्रभाव दीपिकायां बहुलतरंलिखितम् । विष्णुपुराणेत्वेतादृशानां निंदा स्पष्टतया श्रूयते । तथाहि तत्र ६ अंशे १ अध्याये १४ श्लोके--सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनंद्विज । देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्यचाश्रमइति ।

अर्थः–किंच इन लोगों के कल्पित ग्रंथो में श्रुति पुराण प्रतिपादित परम सेव्य शिव जी की पूजा निन्द्य कही गई है। और स्वयं ये लोग शूद्र शूर्पकार, भिल्ल, चांडाल, जातीय शठकोप, भक्ति सार, परकाल, मुनि वाहनादि १२ आलवार जो इस मत प्रवर्तक और आचार्य है उनकी प्रतिमा स्थापन करके पूजन तथा उच्छिष्ट भोजन करते हैं। इस का प्रमाण यह लोग ही अपने मतानुसार दिव्यसूरि प्रभाव दीपिका में बहुत लिखे हैं। विष्णु पुराण में तो ऐसे विषय की स्पष्ट निन्दा की गई है तहां अंश ६ अध्याय १ श्लोक १४ में कहा है कि–कलिकाल में जिसका जो वचन होता है वही शास्त्र हो जाता है और सभी देवता माने जाते हैं और मन माने आश्रम भी मानलिये जाते हैं (यह कलिकी विलक्षणता है)

किंचैतेषां नारायणसार संग्रहे—पाद्मोत्तरखंडेच—कणादं गौतमं शक्ति मुपमन्युंच जैमिनिम्। कपिलं चैव दुर्वासं मृकंडुंच बृहस्पतिम्॥ भार्गवं-जमदग्निंच दशैतांस्तामसानृषीन्। मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कांदं तथैवच॥आग्नेयंच षडेतानि तामसानि प्रचक्षते॥ मानवी याज्ञवल्कीच आत्रेयी दाक्षिणी तथा। कात्यायनी वैष्णवी च राजसी स्वर्गदास्मृतिः॥ गौतमी बार्हस्पतीच सांवर्ती च यमस्मृतिः। शांखीचौशनसीदेवि तामसी निरयप्रदे त्याद्युपक्रम्य। सात्विका मोक्षदाःप्रोक्ता-राजसाःस्वर्गदामताः। तथैव तामसा देवि निरय-प्राप्तिहेतव इत्युक्तम्॥ अत्रस्त्रीक्लीबालिंगाभ्यां निर्दिष्टानां स्मृतिपुराणानां सात्विकामोक्षदाः प्रोक्ताइत्यादि पुल्लिंगेन सह संबंधासंगतेर्बाल-रचितान्येवैतानि वचनानि।

अर्थः—इनके नारायणसार संग्रह पाद्मोत्तर खंड में भी वचन हैं कि कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, कपिल दुर्वासा, मृकंड, बृहस्पति, भार्गव, जमदग्नि ये दश ऋषि तमो

गुणी हैं। मात्स्य, कौर्म, लैङ्ग, शैव, स्कान्द, आग्नेय यह छे पुराण भी तामस हैं। मनु याज्ञवल्क्य, आत्रेय दाक्षिण, कात्यायन और विष्णु ये स्मृति राजसी स्वर्ग प्रद हैं। गौतम बार्हस्पत्य, संवर्त, यम, शंख, उशना ये स्मृति तामसी नरक प्रद हैं। यह उपक्रम करके कहा है। सात्विक मोक्ष प्रद हैं राजस स्वर्ग प्रद हैं। और तामस नरक प्रद हैं ऐसा कहा है। इन वचनों में स्त्रीलिंग नपुंसक लिंग करके कहे स्मृति पुराणोंको सात्विक मोक्षप्रद इत्यादि पुंल्लिग के साथ संबंध है जो न होना चाहिये अतः ये वचन बालरचित प्रतीत होते हैं।

वायु पुराणादिषु विशुद्ध सत्वप्रधानत्वेनोक्तानामृषीणां तामसत्वेन कीर्तनमपि पाखंडत्व सूचकमेव। ये चैतानि मत्स्यपुराणादीनां नरकप्रदत्व प्रतिपादकानि वचनानि सत्यानीति स्वीकुर्वन्ति तैर्मत्स्यपुराणादि कर्तारोमुनयो वंचका इति वक्तव्यम्; मुनिभिस्तत्तच्छास्त्रस्यफलस्तुतिषुश्रेयः साधनत्वेन प्रशंसितत्वात्॥ तथाहि- मात्स्ये वाराहचरित्रे-इदंपुराणं परमं पुण्यंवेदैश्च संमतमिति। अन्तिमाध्यायेच-यदेतत्सर्वं शास्त्राणां पुराणं मूर्धिसंस्थितमिति। वामन पुराणे

१२ अध्याये । श्रुतिर्वरायद्विदेहागमेषु मुख्यं पुराणेषु यथैव मात्स्यमिति ॥ भागवतेऽपि८स्कंधे २४ अध्याये मात्स्यमधिकृत्योक्तम्—पुराण संहितांदिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीमित्यादि । एवंसर्वेषामार्ष शास्त्राणामुपादेयत्व प्रतिपादकानिशतशोमुनिवाक्यान्युपलभ्यन्ते, तानितु विस्तरानुमेयानि ।

अर्थः वायु पुराणादिकों में विशुद्ध सात्विक कहे गये महर्पियोंको तामसी वनाना यह पाखंड पना ही है। जो लोग (मत्स्यपुराणादिक नरक प्रद है), ऐसे वचनों को सत्य मानते हैं उनके मतसे उन पुराणों के कर्ता ऋषि भी वंचक ठहरे। परन्तु मुनियोंने तो उन २ ग्रंथों की फलस्तुति में उनको कल्याण कारी कहकर प्रशंसा की है। यथा मत्स्यपुराण वाराह चरित्र में कहा है कि यह पुराण उत्तम है और वेदों से सम्मत है। अन्तिम अध्याय में कहा है यह पुराण सव शास्त्रों का माथा है ॥ वामन पुराण १२ अध्याय में कहा है कि जैसे वेदांत शास्त्र में उपनिषद श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार पुराणों में मत्स्य श्रेष्ठ है। भागवत ८ स्कन्ध २४ अध्याय में मत्स्य का उद्देश्य करके कहा है कि यह मत्स्य पुराण संहिता दिव्य है और सांख्य योग क्रियावाली है इस प्रकार आर्ष शास्त्रों की श्रेष्ठता प्रतिपा-

दक सैकडों मुनि वचन पाये जाते हैं इस विस्तारका अनुमान करलेना चाहिये।

तथैतेषां भारद्वाज संहितायां—नाति संगं परिचरेत्पित्रादीनप्यवैष्णवान् ॥ ब्रह्मरुद्रादिगीशार्कतच्छक्ति प्रसवादयः॥ नित्यमभ्यर्चने वर्ज्याः कामोऽपिस्यात्तदुन्मुख, इत्याद्युक्तम्। तत्तुमन्वादिभिरतीव विरुद्धम्। तथाहि २ अध्याये २२९ श्लोके मातरं पितरमुपनेतारंचाधिकृत्याह मनुः तेषांत्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते। नतैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यंसमाचरेत्। सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः। अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफलाः क्रियाइति॥ योगी याज्ञवल्क्यश्च, ब्राह्मवैष्णवरौद्रैस्तु सावित्रै मैत्र वारुणैः। तल्लिंगैरेवमंत्रैस्तान् पूजयेन्नित्यमादरादिति;ब्रह्मरुद्रादीनां पूजाप्रत्यहं कार्येति विदधाति।

अर्थः—इनके भारद्वाज संहिता में है कि पिता अवैष्णव होवै तो उसकी सेवा न करनी चाहिये। ब्रह्मा रुद्र दिक्पाल सूर्य तथा इनकी शक्ति से उत्पन्न हुये और भी देवताओं की

पूजा चाहे उनसे कोइ काम भी निकलता होवै न करनी चाहिये। किन्तु मन्वादिने इस के विरुद्ध कहे हैं यथा २ अध्याय २२९ श्लोक में, माता पिता उपनयन करता को लेकर कहा है कि- इन तीनों की सेवा करना परम तपस्याहै इन तीनों की आज्ञा विना कोइ दूसरा धर्म न करै। जिसने इन तीनों का आदर किया है वह सब धर्मों का आदर कर चुका। जिसने इन तीनों का अनादर किया उसकी सब क्रियायें निष्फल हैं। योगी याज्ञ वल्क्यने कहाहै ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, मित्रावरुण इन के मंत्रो से इनकी नामनिर्दिष्ट पूजा नित्य आदर से करे। ऐसा विधान किया है॥

तथाच—नशूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः। सर्व वर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ताजनार्दने॥ श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधम इत्यादयः श्लोकाःस्वमाहात्म्यप्रतिपादनार्थं तद्विरोधिब्राह्मणनिन्दनार्थं चैतैर्निर्मिताः। तेऽपि मनोः प्रथमाध्यायस्थ ९८, ९९ श्लोकाभ्यां तथा ९ अध्यायस्थ ३१७—३१९ श्लोकाभ्यां निरसनीयाः। यथा—उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिं धर्मस्य शाश्वती।

साहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते। ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥ अविद्वांश्चैवविद्वांश्च ब्राह्मणोदैवतं महत्॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्चयथाऽग्निर्दैवतंमहत्। एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्व कर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाःपूज्यापरमं दैवतं हि तदिति॥

अर्थः—भगवद्भक्त को शूद्र नहीं कहना चाहिये और विप्रको भगवद्भक्त नहीं कहना चाहिये किन्तु सब वर्णोंमें शूद्र वेही हैं जो जनार्दन के भक्त नहीं है। (श्वपच) चांडाल भी यदि विष्णु भक्त है तो द्विजोंसे अधिक है। और विष्णु भक्तिसे हीन द्विज भी श्वपच से अधम है—इत्यादि श्लोको को अपना महात्म्य बढाने और ब्राह्मणों की निन्दा के अर्थ इन लोगोंने नूतन बनाये हैं। सो भी मनु १ अध्याय ९८, ९९ तथा ९ अध्याय ३१७, ३१९. श्लोकोंसे मानने योग्य नहीं है यथा—ब्राह्मणकी उत्पत्ति ही धर्म की नित्यमूर्ति है। ब्राह्मण धर्म के ही अर्थ उत्पन्न हुआ है और वही मोक्षका भागी होता है। ब्राह्मण उत्पत्ति मात्रसे पृथ्वी पर उच्चता को प्राप्त है और सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ व धर्मका रक्षक है। अग्नि जैसे अहित तथा अनाहित दोनों तुल्य हैं इसी प्रकार ब्राह्मण

भी विद्वान् और अविद्वान दोनों ही देवता हैं। इसी प्रकार यद्यपि अनिष्ट कार्य में भी ब्राह्मण वर्तमान होवैं तो भी सर्वथा ब्राह्मण पूज्य हैं क्योंकि परम देवता है।

किंच। न शूद्रा इत्यादि वचनानां तात्पर्यान्वेषणे क्रियमाणेश्रुतिस्मृत्यादिषु विष्णुभक्तैरभक्तैर्वेहैव जन्मनि ब्राह्मणत्वशूद्रत्वापादकत्वेनानुक्तत्वात्। तथा व्यवहारदर्शनाच्च। चातुर्वर्ण्य सांकर्यप्रतिपादनपरत्वमेव तद्वचनप्रामाण्यवादिषु तथाव्यवहार दर्शनात्। तादृशानांच विष्णुपुराणे ३ अंशे १८ अध्याये। चतुर्णांयत्रवर्णानां मैत्रेयात्यंतसंकरः। तत्रास्था साधु वृत्तीनामुपधाताय जायते। ब्राह्मणाद्याश्चये वर्णाःस्वधर्मादन्यतोमुखम्। यांति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः तस्मादेतान्नरो नग्नांस्त्रयी संत्यागदूषितान्। सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु। इति निंदैवक्कृता,

अर्थः—"न शूद्रा" इत्यादि वचनों का तात्पर्य श्रुति स्मृतियों में ढूंढनेसे, यहकि विष्णुभक्त शूद्र भी हो वही इसी

जन्म में ब्राह्मण हो जाता है और विष्णुभक्ति रहित ब्राह्मण भी इसी जन्म में शूद्र हो जाता है, ऐसा कहीं नहीं पाया जाता है। तथा लोक व्यवहार में भी ऐसा नहीं देखा जाता हे। जो लोग इन वचनों को प्रमाण मानते हैं उनके मत में चारों वर्णों की वर्ण संकरता पाई जाती है। इस विषय में विष्णुपुराण देखो ३ अंश १८ अध्याय में कहा है—हे मैत्रेयजी चारोंवर्णों जहां अत्यन्त सांकर्य है तहाँ साधुओं की स्थिति नाश ही के अर्थ होती है। ब्राह्मणादिक चारों वर्ण यदि अपने धर्म से च्युत हो जाते हैं और हीन कर्म करने लगते हैं तो उनकी नग्न संज्ञा हो जाती है पण्डित लोग इन वेद-च्युत नग्नों से वातचीत तथा छूना भी सर्वदा निषिद्ध समझें इस प्रकार निन्दा की गई है।

तथा "श्वपचोपि महीपाल" इत्यत्र पूर्वार्द्धे विष्णुभक्ति हीनेभ्यो द्विजेभ्योविष्णुभक्तस्य श्वपचस्याधिक्यम्। उत्तरार्द्धे च, विष्णुभक्तेभ्यः श्वपचेभ्यो विष्णुभक्तिहीनस्य द्विजस्याधमत्वं विवक्षितम्। अन्यथा। अर्थापत्यैव। पूर्वार्द्धे द्विजस्याधमत्व उत्तरार्द्धे च श्वपचस्योत्तमत्वे प्राप्ते पुनरुक्तत्वं स्यात्। तदेतादृशवचनरचने कस्यार्थप्रवृत्तिःसंभाव्यते यच्च। ये कण्ठलग्नतुलसीनलि-

नाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः। ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवाभुवनमाशुपवित्रयंतीत्यादि वचनानि स्वकीयंलिंगधारणकारणत्वेन निर्मितानि ।

तथा श्वपचोपि महीपाल इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में विष्णु भक्ति हीन ब्राह्मणों से विष्णु भक्ति सहित श्वपच को अधिकता है उत्तरार्द्ध में विष्णु भक्ति सहित श्वपचसे विष्णु भक्ति हीन ब्राह्मण की निन्दा कही गई है। अन्यथा कहने पर (अर्थापत्ति) अर्थ दोष लगता है। पूर्वार्द्ध में द्विजका अधमत्व और उत्तरार्द्ध में श्वपच की उत्तमता प्राप्त है इससे पुनरुक्त दोष लगता है। तो ऐसी वचन रचना में कौन सी विशेषता है। और जो कि, जिनके कंठ में तुलसी व कमलाक्ष की माला है और जिन के वाहु मूल में शंख चक्र का चिन्ह है जिनके ललाट में उर्ध्व पुण्ड्र विराजित है वे वैष्णव संसार को शीघ्र पवित्र करते हैं, इत्यादिक वचन अपने लिंग धारण की प्रशंसा में बनाये हैं।

तदपि मत्स्य पुराणे १६ अध्याये—वर्जयेल्लिंगिनःसर्वाञ्छ्राद्धकाले तु धर्म विदिति। मात्स्य एतदेव प्रतिष्ठा प्रकरणेच, नैतद्विशीलेन न

दांभिकेन न लिंगिना स्थापनमत्र कार्य्यम् । विप्रेण कार्य्यंश्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यमिति । लिंगधारणस्य निषिद्धत्वापादकत्वेनोक्तत्वाद्दूषितान्येव वास्तवंतु विष्णुभक्त लक्षणं विष्णुपुराणे ३ अंशे ७ अध्याये प्रोक्तम्—न चलति निजवर्णधर्मतो यः सम मतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे । न हरति नच हंति किंचिदुच्चैः सित मनसं तमवेहि विष्णुभक्तमिति । एवमेतेषां सर्वमप्याचरणं शास्त्र विरुद्धम् प्रदर्शितम् ॥

अर्थः—सो भी मत्स्य पुराण १६ अध्याय मे निन्द्य है यथा—धर्मका वेत्ता श्राद्ध काल में सब लिंग धारियों को वर्जित करै । पुनः मत्स्य पुराण के प्रतिष्ठा प्रकरण में कहा है यथा—देवताओं की प्रतिष्ठा दुःशील, पाखंडी, लिंगधारी लोग नहीं कर सक्के किंतु वेद पाठी गृहस्थ धर्मरत ब्राह्मण ही करैं । इस प्रकार लिंग धारण का निषेध है तो लिंग धारण के वचन सर्वथा दूषित ही हैं ॥ वास्तविक विष्णुभक्त के लक्षण विष्णु पुराण ३ अंश ७ अध्याय में इस प्रकार कहा है—जो अपने वर्णधर्म से विचलित नहीं होता और शान्त चित्त है तथा मित्र शत्रु में समता रखता तथा उत्तम वस्तु को न चुराता है और

न उसका नाश करता है ऐसे शुद्धमन वाले को विष्णु भक्त जानो। इस प्रकार यह जो आडम्वरी लिंग धारी विष्णु भक्त वनते है उनका सव आचार शास्त्र विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रकट है।

उपासनाऽप्येतेषां "विनाद्वयेन वै विप्रश्चांडालत्वमवाप्नुयादित्यत्रोक्तो द्वय मंत्रो" यथा— "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" "श्रीमते नारायणायनमः" इति ॥ अयमेवैतेषां परमोपास्यो मंत्रोऽस्यातीवमहिमैतेषां ग्रंथेष्वेतैरुक्तः, किंत्वस्याऽनु पूर्व्याऽऽर्षमूलं नास्त्येवेति निश्चयः ॥ सिद्धान्तोऽप्येतेषांविशिष्टाद्वैतमिति। तस्यार्थस्तु "चिच्छब्दवाच्याजीवाः अचिच्छब्दवाच्यो जड़प्रपंचः तदुभयविलक्षणंब्रह्म"। तत्र स्थूलचिदचिद्विशिष्टं ब्रह्मकार्यं सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं ब्रह्म कारणम्, विशिष्टंचाविशिष्टंच विशिष्टे विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतमिति। एतच्चाद्वैतवादिभिर्बहुशो निराकृतमित्यस्माभिरुपरम्यते ॥

अर्थः—उपासना भी इन की—" विनाद्वयेन व विप्र श्चाण्डालत्वमवाप्नुयात्, " इस में द्वय मंत्र की मुख्यता है, सो—

श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये, "श्रीमते नारायणाय नमः," । यही दोनों इनके परम उपास्य मंत्र हैं । इन दोनों की महीमा इनके ग्रंथों में इन्हों के द्वारा कही गई है। किन्तु मंत्र की आनुपूर्वी देखने से ऋषि प्रणीत नहीं पाया जाता यह निश्चित है । सिद्धान्त भी इन का विशिष्टाद्वैत है तिसका अर्थ यह है–चित् शब्द से जीव कहे जाते हैं और अचित् शब्द से जड संसार कहा जाता है इन दोनों से विलक्षण ब्रह्म है । तहाँ स्थूल चित् अचित् से मिला ब्रह्म कार्य रूप है और सूक्ष्म चित् अचित् से मिला ब्रह्म संसार के प्रति कारण है। दो विशिष्ट पद वाचियों की जो अद्वैतता है सोई विशिष्टाद्वैत- है। इस मत को अद्वैत वादियोंने वहुत प्रकार से खण्डन किया है अतः हम लोग इसकी अव अधिक व्याख्या नहीं करते ।

वस्तुतस्तु विशिष्टाद्वैतशब्दस्यार्षत्वाभावात् एतादृशविचारस्यच वेदांतविषयत्वात् । रामानुजमतस्य च शूद्रादिभ्यः प्रचलितत्वात् । शूद्रस्य च श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधादिति ॥ वेदांतसूत्रे १ अध्याये ३ पादे ९ अधिकरणे ब्रह्मविचाराधिकारनिषेधात् । मनुनाच ४ अध्याये ८० श्लोके । न शूद्रायमतिंदद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् । नचास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादि-

शेदिति । शूद्रं प्रत्युपदेशमात्रस्य निषिद्धत्वात् । किमुत वक्तव्यंशूद्रादुपदेशग्रहणस्य निषेधइति । तथा पराशर स्मृतौ १ अध्यायांते—कपिलाक्षीर-पानेन ब्राह्मणीगमनेनच । वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चांडालतां व्रजेदिति ॥ वेदसंपर्कमात्रं यत्र-निषिद्धं तत्र तद्ग्रहस्य विचाराधिकारः कथं संभाव्यते, तस्मादस्य सिद्धांतस्य युक्तत्वायुक्तत्ववि-चारो वन्ध्यासुतस्य सौंदर्य्यासौंदर्य्य संभावन-वच्छशाविषाणस्य तैक्ष्ण्यातैक्ष्ण्यसंभावनवत् । खपुष्पस्य सुरभित्वासुरभित्वसंभावनवच्चासंभा-वित एव । अथवा शूद्रेण क्रियमाणे वेदपाठे ज्योतिष्टोमादौ वा शुद्धाशुद्ध संपन्नासंपन्नविचा-रवदनावश्यक एवेत्यलम् विस्तरेण ॥

अर्थः—यथार्थ में तो विशिष्टाद्वैत शब्द ही आर्ष नहीं है। एतादृश विचार वेदांत विषयक हैं और रामानुज मतशूद्र से चला है जो कि शूद्रों को वेदाध्ययन श्रवणादि का निषेध है। वेदान्त सूत्र १ अध्याय ३ पाद ९ अधिकरण में शूद्रोंको ब्रह्म विचार करने का निषेध है और मनुजीने भी ४ अध्याय ८०

श्लोक में कहा है कि शूद्र को मति न देना और निज सेवी को छोडकर उच्छिष्ट न देना और हवि का शेष न देना तथा धर्मोपदेश व व्रतोपदेश न करना। जबकि शूद्र को उपदेश देने तक को मना है तो उलटे उससे उपदेश ग्रहण करने के निषेध के विषय में क्या कहा जाय। पराशर स्मृति में अध्याय १ के अन्तमें है कि शूद्र कपिला गाय के दूध पीनेसे, ब्राह्मणी के गमनसे वेद के विचार करने से चाँडाल होजाता है। जहाँ वेद का संबंध मात्र निषिद्ध है तहाँ शूद्र को वेद रहस्य के विचाराधिकार की क्या संभावना की जाय। अतः इस रामानुजीय सिद्धांत के योग्यायोग्य पर विचार करना वन्ध्या पुत्र की सुरूपता कुरूपता की भांति, खरहे के सींग को चोखाइ व मोटाई की भांति, आकाशके फल की सुगंधि की भांति व्यर्थ ही है। अथवा शूद्र करके किये हुये वेद पाठ तथा ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में शुद्धाशुद्ध का विचार पूर्णता. अपूर्णता के विचार को भांति इस मत के विषय का विचार अनावश्यक है। अतः अधिक विस्तार करना व्यर्थ है ॥

तोताद्रिस्थं मुख्यमास्थानमन्यच्चस्मान्मान्यं नास्ति रामानुजानां । श्रेष्ठोयोभूत्तत्रपट्टाभिषिक्तो जीरोपाख्यो विष्णुचित्तस्त्रिदंडी । १ । रामाभ्रांकक्ष्मामिते १९०३ विक्रमाब्दे प्राप्तः का-

श्यामाश्विने शुक्लपक्षे । सोऽह्वयेवादौदीर्घमुल्का चतुष्कं प्रज्वाल्याग्रे प्राविशद्राजमार्गम् ॥ २ ॥ सत्सिद्धांताभावजंध्वांतमत्रव्याप्तं प्राहोल्काचतुष्कस्य हेतुम् । अन्यच्चास्याकर्ण्य शिष्यैस्तदीयै र्गर्वोत्कर्षाद्‌घोषितं तत्र तत्र ॥ ३ ॥ ये संत्यत्र सदुक्तियुक्तिपटवो राद्धांतपारंगताः, शक्तादूषयितुं श्रुतिस्मृतिनुतं रामानुजीयंमतम् ॥ तेऽसीतीरविनिर्मिते खलु जगन्नाथाश्रिते मंदिरे, शुक्रोर्जासितपंचमीयुतदिने वादार्थं मायांत्विति ॥ ४ ॥ श्रुत्वैतेषां तत्र जग्मुर्द्विजेन्द्रा धर्मं श्रौतं स्मार्तमालंबमानाः। तैराहूतास्तेचरामानुजीया भीतानैवोऽपीयुरेकेऽपितत्र ॥ ५ ॥ तदा द्विजैः सर्वजगद्धितार्थं सद्धर्मरक्षाकर पत्रमेतत् । प्रकाशितं यस्य विलोकनेन रामानुजीयाश्चकिताबभूवुः॥६॥ निरुत्तराधोवदनाः स्वकीयं विज्ञाय पाखंडमतं निकृष्टम् । स्वीकृत्य सर्वं द्विजभाषितं तद्गता स्त्रिदंड्यादय इत्थमेतत् ॥ ७ ॥ इति रामानुजीय

मत खंडनं संक्षेपतो निरूपितम्॥ शिवोजयतु॥

अर्थः—रामानुज संप्रदाय में तोतादरी मुख्य स्थान माना जाता है कि जिसकी समता का दूसरा स्थान नहीं है। तहाँ के पट्टाभिषेकी जीर स्वामी नामक विष्णु भक्त त्रिदण्डी वडे उत्तम हुये। वह विक्रमाब्द सं. १९०३ आश्विन शुक्ल में काशीजी आये और दिन में ही चार मशालैं जलाकर सडकों में घूमने लगे। लोगें के पूछने पर कहते थे कि यहाँ सत् सिद्धान्त नहीं है अतः उसका अंधकार दूर करने को यह मशालैं दिनमें ही जलाई गई हैं॥ और भी इनके शिष्य चिल्ला २ कर वडे गर्व से कहते थे कि जो लोग यहाँ उक्ति युक्ति में कुशल और सिद्धांत के पारंगत होवैं और जो श्रुति स्मृति प्रतिपादित रामानुजीय मत को खंडन कर सकैं वे लोग कार्तिक कृष्ण ८ शुक्रवार को अस्सीतीर पर जगन्नाथ जी के मन्दिर में विवाद करने के लिये आवें॥

यह सुनकर श्रौतस्मार्त धर्म के मानने वाले ब्राह्मण लोग वहाँ पहुंचे और उन लोगें को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। तब रामानुजीय लोग एक भी डर कर पण्डितों के पास नहीं आये। तब ब्राह्मणों ने सब संसार के हितार्थ सद्धर्म की रक्षा के लिये इस पत्र को प्रकाशित किया जिसको देखकर रामानुजीय लोग चकित हो गये। और अधोमुख होकर निरुत्तर होते अपने पाखंड मत को नीच मानते हुये ब्राह्मणों का

कहना मानकर त्रिदंडी आदि चले गये। यह रामानुज मत खंडन संक्षेप से निरूपण किया गया। शिवोजयतु।

अथातो नवीनव्यवस्थापत्रं लिख्यते ॥

अथ वाराणसी पूर्वतो बकसर सन्निधौ वीरपुरे निवसतोः संन्यास्यंकितवैष्णवयोर्विवादः संवृतः। तत्र संन्यासिना वाराणसीसर्वविद्वज्जनसंमतप्राचीनव्यवस्थापत्रमवबुद्ध्यता। शंखचक्राभ्यां ब्राह्मणादेरुत्कृष्टजन्मनः शरीरदाहो न कर्त्तव्य इत्युक्तम्। तदसहमानेन वैष्णवाभासेन स्वमते श्रुति स्मृतयोऽनेकशः संतीति वदता महान् कोलाहलःकृतः। तदर्थमुभाभ्यां वाराणस्यामागमनं कृतं विवादपरिहारार्थं च महादेवाश्रम गौड़स्वामितारकाश्रमश्रीमत्पण्डितरामकृष्णाः साक्षित्वेनोपन्यस्तास्तत्र महादेवाश्रम श्रीमत्पण्डितरामकृष्णाभ्यांचाभावे विवादभयात्त्यक्तावुभाभ्यांच सकलशास्त्रपारगाभ्यां कथमश्रौतस्य श्रौतत्वमस्माभिर्बलादापाद्येतेत्युक्तम्। तदुत्तरमंकित वैष्णवेन किंचिद्द्रव्यव्ययेन काशी-

नाथादिभ्यस्तप्तमुद्रा धार्य्यनुयायिभ्यो व्यवस्था-पत्रं संपादितम् ॥ इतरैश्च वाराणसीस्थपंडितैः यथा शास्त्रं निर्णयं रोचयद्भिर्यथाशास्त्रं निर्णीय निरूपितम् ।

अर्थः—काशीजी के पूर्व बकसर के समीप वीरपुर ग्राम में रहने वाले एक संन्यासी दूसरे तप्त मुद्रा लांछित वैष्णव का परस्पर संवाद हुआ। संन्यासी को वाराणसीस्थ सव विद्वानों का संमत पुराना व्यवस्था पत्र ज्ञात था अतः वह कहने लगा कि उत्तम जन्मा ब्राह्मण को शंख चक्र मुद्रासे शरीर दाह नहीं कराना चाहिये। तब तो वने विष्णु भक्त यह बात न सह कर कहने लगे कि हमारा मत अनेक श्रुति स्मृति प्रति-पादित है इस प्रकार बडा हल्ला मचाया। और इस के निप-टारा के लिये दोनों काशी आये वहाँ महादेवाश्रम, गौड-स्वामी, तारकाश्रम; पण्डित रामकृष्ण को मध्यस्थ वनाया तव दोनों शास्त्र प्रवीण महादेवाश्रम और पं. रामकृष्ण ने दोनों को विवाद के भय से निवृत्त करके वोले कि हमलोगों से जो बात वेद से भिन्न है उसे श्रुति विहित क्यों कहलाना चाहते हो॥ इस के पीछे अंकित वैष्णवने कुछ द्रव्य खर्च करके काशीनाथ इत्यादि कों को तप्तमुद्रा समर्थक वनाकर व्यवस्था पत्र वनवाया। और दूसरे ने शास्त्रोचित निर्णय करने वाले पण्डितों से शास्त्रानुकूल निर्णय कराके इस व्यवस्था पत्र का निरूपण कराया।

तथेह लिख्यते । सो लिखा जाता है

तत्रश्रेयः साधनं श्रौतस्मार्तं कर्म । तत्रश्रौतं ज्योतिष्टोमादि, स्मार्तं गृह्यादि, उभयसंभवेनैव सतामाचारः प्रवर्तते । तत्र न वयं कांचिच्छ्रुतिं स्मृतिं वा अंकिताऽचारपरामुपलभामह इति । किमित्येतमाचारं श्रौतंस्मार्तं वा बलादापादयामः । अयमेव निर्णयः शांडिल्यसूत्रवृत्ति भक्तिचंद्रिकाव्याख्याने कृत इति । तद्ग्रंथ एव लिख्यते ।

यत्तु लिंग धारणं पाद्मे । ये कंठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुंड्रास्ते वैष्णवाभुवनमाशुपवित्रयंतीत्यादि वैष्णवानां, तथा शूलादिधारणं शैवानां, तन्नवेदाधिकारिणाम्। किंच। तप्त शंखादिधारणं शूद्राणां कुंडगोलकादीनां विष्णुस्मृतौ। शंखचक्राभ्यंकनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न जातुस्याद्विजन्मनः।

यथा स्मशानजं काष्ठं सर्वकर्मसु गर्हितम्! तथा चक्रांकितो विप्रः सर्व कर्मसु गर्हितः॥ शंखचक्रे मृदायस्तु कुर्यात्तप्तायसेनवा। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मण इत्यादिना। तप्त मुद्राधारणस्य शूद्रपरत्वावगमात्।

अर्थः—श्रुति स्मृति उक्त कर्म कल्याण कारी है। तहाँ श्रुति विहित कर्म ज्योतिष्टोमादि हैं और स्मृति विहित कर्म गृह्यादि अर्थात् गृह सम्बंधी सभी हैं। दोनों को संभावना पर ही सज्जनों का आचार अवलम्बित है। तहां हम लोगोंने कोई श्रुति वा स्मृति ईदृक् नहीं पाया कि जो अंकिताचार को बतलाती होवै तो यह आचार श्रुति निरूपित है वा स्मृति निरूपित है ऐसा बलपूर्वक कैसे कहैं। यही निर्णय शांडिल्य सूत्रवृत्ति भक्तिचंद्रिका के व्याख्यान में है। सो वह ग्रंथ प्रकरण ही लिखा जाता है। जो लिंग चक्रादि धारण करना पद्मपुराण में है जैसे “ये कंठ लग्न तुलसी नलिनाक्षमाला” इत्यादि वैष्णवों को तथा शूलादि धारण करना शैवों को कहा है वह वेदाधिकारी द्विजों को नहीं है किन्तु तप्त शंखादि धारण करना शूद्र तथा [१]कुंडगोलकों को है। क्यों कि विष्णु

१ पति के जीते पर पुरुष से जन्मा पुत्र कुंड है और पतिके मरने पर अन्य जन्मा पुत्र गोलक कहलाता है।

स्मृति में कहा है । यथा—शंख चंक्र का चिन्ह रखना और गाना नाचना यह शूद्र का धर्म है इस को द्विजन्मा कभी न करै। जैसे स्मशान का काष्ठ सब कर्मों में निन्दित है उसी प्रकार चक्रांकित ब्राह्मण सब कर्मों में निन्द्य है। शंख चक्र का चिन्ह जो मृत्तिका से अथवा तपाये लोह से धारण करता है वह शूद्रवत् सब ब्रह्म कर्मों से बाहर करने योग्य है इत्यादि वाक्यों से तप्त मुद्रा धारण शूद्र विषयक है ॥

ननु महाभारते नारायणोपाख्याने । प्रशंसित पंचरात्रागमस्य प्रसिद्धाचारस्य किमितिविरुद्धस्मृत्यवष्टंभेननिंदाक्रियत इतिचेत्। सत्यम्। द्विविधत्वात्पंचरात्रागमस्य न वयं भारतप्रसिद्धपंचरात्रागमं निंदामः। तस्यच तत्रैव लुप्यमानतया निर्देशात्। तथाहि। उपरिचरवसुसंज्ञकं राजानमुपक्रम्य "सच राजा श्रियायुक्तो भविष्यति महान्वसुः। संस्थितेतु नृपे तस्मिन् शास्त्रमेतत्सनातनम्। अंतर्द्धास्यति तत्सर्व मेतद्वः कथितं मयेति।यश्चेदानीमुपलभ्यते तस्यैवनिन्दाऽपि यथाकौर्मे। सात्वतो नाम परमो विष्णुभक्तप्रतापवान्। महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां-

वरः॥ स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः। शास्त्रं प्रवर्तयामास कुंडगोलादिभिःश्रितम्॥ अत एतद्वाक्यादभिनवोऽपि पंचरात्रागमः कश्चिदस्ति सांबपुराणे । पंचरात्रं सात्वतं यत्तंत्रं वैखानसान्वितम्। वेदभ्रष्टान्समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवानिति॥ पंचरात्रं सात्वतमिति समानाधिकरणं तेन प्राचीनपंचरात्रागमव्यवच्छेदः। ततः तच्छास्त्र प्रसिद्धतप्तमुद्राधारणस्य कुंडगोलकादिपरत्वं निश्चीयते। किंच। महाभारत निर्दिष्टपंचरात्रेण न शंखादिधारणमभ्यनुज्ञायते।

अर्थः—शंका—महाभारत नारायणो पाख्यान में पंचरात्र प्रशस्त है उस से सिद्धजो यह आचार है उसको विरुद्ध स्मृतियों के प्रमाण से क्यों निंदा की जाती है।

उत्तर—पंच रात्र दो हैं तो हम महाभारत पंचरात्रकी निंदा नहीं करते क्योंकि भारत का पंचरात्र लुप्त हो गया है यह उसी भारत में ही कहा है सोई देखाते हैं। उपरिचर वसु संज्ञक राजा के उपक्रम में। सो राजा लक्ष्मी से युक्त बडा भारी वसु होगा उसके रहते ही यह महान् शास्त्र (पंचरात्र) अन्तर्द्धान हो जायगा यह वात आपसे निश्चित कहा है। सो

भारत का पंचरात्र लुप्त है अतः उसकी निंदा नहीं है। जो इस समय मिलता है उसी की निन्दा कूर्म पुराण में है। यथा सात्वत नाम का एक वडा प्रतापी विष्णु भक्त हुआ वह महात्मा दानी और धनुर्वेद में निपुण था। वह नारद के उपदेश से वासुदेव के पूजन में तत्पर हुआ। और कुंड गोलकादि कों से आश्रित शास्त्र का प्रचार किया। इस वाक्य से ही ज्ञात होता है कि नवीन भी कोई पंचरात्र है। साम्ब पुराण में कहा है यथा—पंचरात्र सात्वत तंत्र तथा वैखानस को लक्ष्मीपति विष्णुजीने वेद भ्रष्टोंके हितार्थ कहा है। पंचरात्र और सात्वत दोनों (एकाधिकरण) एकही विषय हैं अतःप्राचीन पंचरात्र को अलग समझना उसकी चर्चा यहां नहीं है। तो यह पंच रात्रादि उक्त तप्त मुद्रा धारण शूद्र कुंड गोलक परत्व है यह निश्चय हुआ। किंतु महाभारत में कहे हुये पंचरात्र से चक्रादि मुद्रा धारण नहीं अभिज्ञात होता है॥

यत्तु पवित्रंते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वतः अतप्त तनूर्नतदामोऽश्नुते शृता-सइद्वहंतस्तत् शमासते इति श्रुतिस्तप्त मुद्रादि धारणे प्रमाणत्वेनोपन्यस्यतेयश्चतदर्थः। ब्रह्मण-स्पते चतुर्मुखस्यापि प्रभुः नायक, त्वं विश्वतः

सर्वेषां गात्राणि शरीराणि पर्येषि व्याप्नोषिते व्यापकस्य तव विततं पवित्रं चक्रं सुदर्शनं सहस्रारं। पवित्रं चरणं पविरिति नैघंटुकः अत्र यद् स्तीत्यध्याहार्य्यते, न अतप्ततनुः अतएव आमः अपक्वः अदग्धपाप इति यावत्। तत्प्रसिद्धं मोक्ष लक्षणं सुखविशेषं नाश्नुते। तत्पवित्रं सदा वहंतः। अतएव शृतासः परिपक्वास्तत्सुखमासत अश्नुत इत्युत्प्रेक्ष्यते तत्सर्वं न कैश्चिच्छिष्टांगीकरणीयम्। तत्प्रमाणाभावात्। नहियैः कैश्चिदेव स्वकल्पनया एव वेदार्थः संपादनीयः। तत्त्वेच सति कथमुपक्रमादेर्वेदार्थतात्पर्य ग्राहकत्वेनोपन्यासः शिष्ट परि गृहीतः संपाद्येत। अतो वेदव्याख्यातृभिः सर्व शिष्ट संमतैस्सायनाचार्य्यैर्यथा व्याख्यातं तथैव मंतव्यमिति। तदीय व्याख्यानंलिख्यते।

अर्थः–जो "पवित्र ते विततम्" इस श्रुति को तप्त मुद्रा धारण के प्रति अर्थ वदल कर प्रमाण मानते है वह उस श्रुति का अर्थ यह करते हैं–हे परमेश्वर आप ब्रह्मा के भी प्रभु हो

T

और विश्व भरके शरीर में व्याप्त हो व्यापक आपका जो पवित्र अर्थात् सुदर्शन चक्र सहस्र आर वाला है "पवित्र का अर्थ वज्र निघंटु में कहा है" उससे (अतप्त तनु) विना तपाये हुये जन कभी मोक्ष नही पाते किन्तु चक्रांक धारण की पवित्रता से निष्पाप होकर ही लोग मोक्षरूप सुख पाते हैं। ऐसा मानते हैं। सो कोई भी शिष्ट पुरुष इस चक्रांकन अर्थ को स्वीकार नहीं कर सक्ता॥ क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है। किसी को भी अपनी कल्पना से वेद का अर्थ करना उचित नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो कैसे उपक्रम सेवेदोंका तात्पर्य्य समझ कर जो प्राचीन शिष्टोंने अर्थ किया है वह माना जाता। अतः सर्व शिष्टों के मान्य वेद व्याख्या-कार सायनाचार्य्य जीने जो इस मंत्र की व्याख्या की है वही मानने योग्य है। उनकी व्याख्या लिखी जाती है।

ऋग्वेदे सप्तमाष्टके तृतीयाध्याये पूयमान-प्रकरणे। पवित्रंत इति। पंच ऋचं षोडशं सूक्तम्। तत्र ऋक् प्रथमा। पवित्रंत इति। हे ब्रह्मणस्पते मंत्रस्य स्वामिन्। सोम ते पवित्रं शोधकमंगं विततं सर्वत्र विस्तृतं सप्रभुः प्रभविता। त्वं गात्राणि पातुरंगानि पर्य्येषि परि गच्छसि। विश्वतः सर्वतः तव तत्पवित्रम्। अतप्त तनूः

पयोव्रतादिना असंतप्तगात्रः । आमअपरिपक्को नाश्नुते न व्याप्नोति। शृतासस्तत् शृता एव परिपक्का एव वहंतो योगं निर्वहंतः । तत्पवित्रं समाशतः व्याप्नुवंतीति तदर्थः।

अर्थः—ऋग्वेद के सातवें अष्टक तीसरे अध्याय पूयमान प्रकरण पवित्र इति पंचऋच—सोलह सूक्त का प्रथम ऋचा पवित्रंते इति—हे (ब्रह्मणस्पति) मन्त्र के स्वामी सोम (ते) तुम्हारा (पवित्रं शोधक मंगं) शुद्ध करने वाला अंग (विततं सर्वत्र विस्तृतं) सर्वत्र विस्तृत होता (प्रभुःप्रभविता) प्रभाव शील है। (त्वं गात्राणि पातुरंगानि) तुम पीने वाले के अंगमें (पर्य्येषि परिगच्छसि) प्रविष्ट हो जाओ। (विश्वतःसर्वतः तव तत्) तुम्हारे अंग सब ओर (पवित्रम्) पुनीत हैं (अतप्त तनूःपयोव्रतादिना असंतप्त गात्रः) ब्रह्मचर्य्यादि तपसे न तपाये हुये गात्र वाला (आम अपरिपक्को) अतपस्वी मनुष्य (नाश्नुते-नव्याप्नोति) नहीं पासक्ता (श्रृतासस्तत् श्रृताएव परिपक्काएव) परिपक्क अर्थात् तपस्वी ही (वहंतो योगं निर्वहंतः) इस योग को निवाह सक्ता है (तत्पवित्रं समाशतःव्याप्नुवंति) और उसमें पवित्रता व्याप्त हो सक्ती है। यह अर्थ सायनाचार्य्यका है

नचेह, एतेन मंत्रेण शंखचक्राभ्यामंकनं कुर्यादित्येवं स्मार्त विनियोगोऽपि येनान्यत्र

विनियुक्तस्याप्येतदर्थप्रकाशनमपिज्ञायते।सतिच कस्मिश्चिद्वचनसद्भावे कथं संस्कारमयूखेऽन्यत्रच उभयविधान्यपि वाक्यान्युपन्यस्य। एतेषां विधि निषेधानां वैष्णवपरतया व्यवस्था इति केचित्। बहवस्तुद्विविधानामपि निर्मूलता माहुरिति। बहव इति निर्देशेन निर्मूल तैव संमता तेषा-मिति ज्ञायते। अस्माभिरपि बहुनामनुग्रहो न्याय इति तथैव स्वीकर्तव्यम्॥

अर्थः—इसमंत्र से शंख चक्र का चिन्ह करने में स्मृतियों का भी कोई वचन नहीं है कि जिस के नियोगमात्र से शंख चक्रादि अंकन रूप अर्थ का प्रकाश हो वे। यदि माना जावे कि कोई वचन इस विषय का प्रतिपादक है तो संस्कार मयूख ग्रंथ अथवा अन्यत्र कहीं (उभय विध) खंडन मंडन दोनों प्रकार के वाक्य रख कर इन विधि निषेधों का वैष्णव परत्वेन कोई आचार्य कैसी व्यवस्था करते। और वहुत आचार्य्योंने दोनों खंडन मंडन वाक्यों को (निर्मूल) विनाजड की कैसे कहते। ज्ञात होता है कि वहुत इस निर्देश से शंख चक्रांकन का खंडन मंडन करना सभी के मतसे निर्मूल है। अतः हम लोगों को भी वहुमत में आ रूढ होकर वहु मतही स्वीकार करना न्याय है।

यच्चाऽसत्यपि विनियोजकवाक्येऽस्मिन्नेव वाक्ये विधिः कल्पते तन्मंदम् न धार्य्यं देवता चिह्नमित्यादिना निषेधात्। नच सामान्य निषेधस्य विधिना। अग्निषोमीयां पशुमालभेतेति विशेष विधिना भूतहिंसा निषेधकसामान्यवचनस्यैव संकोचएवेति वाच्यम्॥ पुराणेषु। अंगेषु नांकयेद्विप्रो देवतायुधलांछनैः। अंकयेद्यादि वा मोहात्पतत्येव न संशयः॥ तप्तमुद्राह्यंत्यजाय हरिणानिर्मिता पुरा। भूदेवस्तप्त मुद्रांतु चिह्नंकृत्वा विमूढधीः॥ इह जन्मन्यशुद्धः स्यात्प्रेत्य श्वाच भविष्यतीत्यादि विशेषतोऽपि निषेधात्॥

अर्थः—यदि कहा जाय कि दूसरा नियोग करने वाला वाक्य नहीं है तो इसी वाक्य से अंकन करने की विधि मानी जाय सो ठीक नहीं है क्योंकि न धार्य्यं देवता चिह्नम् इत्यादिक निषेध विद्यमान हैं। यदि कहो कि यथा "अग्निषोमीयां पशुमालमेत," अग्निष्टोम यागमें पशु की हिंसा करै, यहां प्राणी हिंसा निषेधक वाक्यों को सामान्य मानकर और इस वाक्य को विशेषमान कर अग्निषोमीय यज्ञ में प्राणि हिंसा होती है इसी प्रकार इस स्थल में भी चक्रांकन के

निषेध वाक्कों को सामान्य मानो और चक्रांकन विधायक वाक्यको विशेष मानो विशेष वाक्यसें सामान्य वाक्य बाधित होजाता है तव चक्रांकन सिद्ध हो गया। सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि पुराणों में कहा है। ब्राह्मण अपने अंग में देवता आयुध चिन्हों से कभी चिह्न न करे यदि मोह से करे तो पतित हो जाने में सन्देह नहीं है॥ तप्त मुद्रा का निर्माण विष्णुजीने अन्त्यजों के लिये किये हैं ब्राह्मण यदि तप्त मुद्रा धारण करै तो मूर्ख कहा जावे और इस जन्म में अशुद्ध माना जावे और परलोकमें कुत्तेका जन्म पावे इत्यादि विशेष वचन से भी निषेध है।

नच पौराणनिषेधेनकथं श्रौतस्य धारणस्यबाधः स्यात्‌।विरोधेत्वनपेक्षमिंति मीमांसा सूत्रोक्तविरोधाधिकरणविरोधादिति वाच्यम्। श्रुतेरन्य परत्वस्योक्तत्वात्। अस्तुवाश्रुतिस्तत्परातथाऽपि स्मृति पुराण वाक्यानुसारेण कुंडगोलकादिरेवतत्राधिकारीष्यतेहि, श्रौतस्याप्यश्वमेधादेः स्मृति पुराण वाक्यानुसारेण कुंडगोलकादिरेवतत्राधिकारीष्यतेहि, श्रौतस्याप्यश्वमेधादेः स्मृतिपुराणादिगतेन कलिनिषिद्धपरिगणितादिना संकोचः,

अन्यथा कलावप्यश्वमेधादिकंस्यात्। स्याच्च पतितस्यापितत्। तस्मान्न तद्वैदिकानामितिसिद्धम्।

अर्थः—यदि कहो कि पुराणोक्त निषेध से श्रुति विहित धारणा करने का बाध कैसे होगा क्योंकि विरोधत्वनपेक्षम् इस मीमांसा सूत्रोक्त जो विरोधाधिकरण है उससे विरोध नहीं आता। उत्तर—श्रुति भी इस अर्थका प्रतिपादन नहीं करती किन्तु श्रुति का अर्थ दूसरा है अथवा यदि श्रुति का भी यही अर्थ होवै तो स्मृति पुराणादि वाक्य से उसके अधिकारी शूद्र कुंडगोलकादि ही हैं क्योंकि स्मृति पुराण वाक्य से श्रुति का बाध है जैसे अश्वमेघ यज्ञ श्रुति विहित है किन्तु कलियुग में स्मृति पुराण वाक्य से निषेध है इस से अश्वमेध यज्ञ नहीं होता अन्यथा कलियुग में भी अश्वमेध होना चाहिये। चक्रांकनादि यदि है तो पतित कोही है वेदानुयायों को नहीं यह वात सिद्ध है।

एतेन विशेष निषेध वाक्यं राग प्राप्त निषेधाभिप्रायमिति निरस्तम्। तप्तमुद्राधारणस्य दुःखरूपत्वेन रागाप्रापितत्वात्। नच तर्ह्यप्राप्तस्य निषधायोगात्। प्रापकस्य शास्त्रस्योपजीव्यत्वेन प्रबलतया तेनैव वाक्येन निषेधस्य बाधः स्या-

T

दितिशंक्यम् ॥ यजतिषुये यजामहं करोतिनानु-यजेष्वित्यादौ सामान्याद्विशेषस्य प्रबलतयाऽत्रापि व्यापकसामान्यविधितो विशेषनिषेधस्यैव प्रबलत्वात्सामान्यस्यै व बाधनादित्यास्तां वि-स्तरः। इतिश्रौतस्मार्ताचरणविनिविष्टानां काशी-स्थविदुषां परामर्शः।

अर्थः—इस करके निषेध का विशेष वाक्य "अङ्केषु-तांकनम्" प्रेमसे करने वालों के निषेध के अभिप्राय से है यह बात भी जाती रही क्योंकि तप्त मुद्रा धारण करना दुःख रूप है तो स्वतःप्रेम से कोई भी नहीं करेगा। किंतु माहात्म्य सूचक प्रमाण लखाने से ही करेगा। यदि कहो कि तप्त मुद्रा धारण की विधि है तभी तो उसका निषेध है विना विधि के निषेध किसका होगा, विधान करने वाला वाक्य निषेध का उपजीवी होने से प्रबल होकर निषेध का बाधक है तो चक्रादि धारण सिद्ध हुआ। सो ठीक नहीं है क्योंकि यजतिषु इत्यादि में जैसे सामान्य वाक्य से विशेष वाक्य प्रबल माना जाता है और सामान्य का बाधक होता है इसी प्रकार यहां भी अंकन विधायक सामान्य वाक्य है और उसका निषेध विधायक विशेष वाक्य है सो निषेध वाक्य मुद्रांकन वाक्य का बाधक है अतः अंकन न करना सिद्ध हुआ। अब अति विस्तार की

आवश्यकता नहीं है। यह श्रौत स्मार्त कर्म तत्पर काशीस्थ पण्डितों का विचार है।

येच वेदबाह्याचारास्तांत्रिक–वैष्णवास्तैर्वैदिकानपि धनलोभपरवशानतिचपलमतीन्। अविश्वसनीयत्वेन लोकप्रसिद्धान्। काशीनाथेश्वरीदत्त प्रभृतिं पंडितानुकूलीकृत्य व्यवस्थाऽऽभासः संपादितः नतत्र कश्चिच्छ्रौतः स्मार्तो वा विद्वान् पक्षपाती संमतिं कुरुतेइति॥

अर्थः–वेद बाह्य तांत्रिक वैष्णवोंने धन लोभ से परवश चंचल बुद्धि, लोक के अविश्वासी काशीनाथ ईश्वरीदत्त आदि वैदिकों को अपने पक्ष में करके जों व्यवस्था पत्र नाम मात्र का बनवाया उसका पक्ष किसी श्रौत स्मार्त कर्मनिष्ठ विद्वान् ने नहीं लिया और न कोई उससे सहमत ही हुये।

१९०७ ऋष्याकाशनवेंदुसंवति शुचौ पक्षे सिते वासरे। शुक्रे शुक्लकुलोद्भवैर्बुधजनैः संभूय संनिर्मितः॥ शास्त्रार्थोऽनलदग्धवैष्णवमतध्वंसी नवम्यां तिथौ। प्रासादे विदधातु पण्डितजनस्वांतप्रसादं चिरम्॥१॥

अर्थः—सं. १९०७ आषाढ शुक्ल ८ शुक्रवार को सभा मंदिर में उत्तम कुलोद्भव पण्डितोंने मिलकर अग्निदग्ध वैष्णव मत के खंडनार्थ शास्त्रार्थ करके व्यवस्था पत्र बनाया सो पंडितो को अधिक आनंद मद होवै ॥ अस्मिन्प्रस्तावेयेषांच विबुधेन्द्राणां संमतिस्तेषां नामानि—इस व्यवस्था पत्र में जिन २ लोगों की सम्मति है उनके नाम यह हैं—

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैवल्यानंद योगीन्द्र भगवत्पूज्यपाद मतानुयायि तीर्थाश्रम सरस्वत्युपनामकानां काशीस्थ ५०० पंच शत दंडिनामत्रार्थे संमतिः ॥१॥ अत्रैवार्थे सुब्रह्मण्य शास्त्रिणः संमतिः नतून्मत्तवद्व्याख्यातुर्वैष्णव-स्य। संमतिरत्रमहानंदस्य। श्रुति स्मृति पुराण बहिर्भूतं रामानुजीयानां चक्रादिधारणमित्यत्र संमतिः शीतलामिश्रस्य ॥ संमतिरत्र कार्तिकेय-मिश्रस्य ॥ अत्रार्थे संमतिः श्रीकृष्णदेवसार्व-भौमभट्टाचार्य्याणाम् ॥ अत्रार्थे संमतिरभयचर-णदेवशर्मणाम् ॥ संमतिरत्रार्थे शंभुशर्मणः। संमतोऽयमर्थो ज्योतिर्वित्कमलाकरमणीराम-

शर्मणः। संमतिरत्रार्थे त्रिपाठ्युपाह्व शिवदयालु शर्मणः । अत्रार्थे संमतिं भवानीचरणदेव शर्मणाम्। वस्तुतोऽयमेव सिद्धांतोऽनुमतो रामेश्वरस्य पत्रांतरेलेखस्तु केषांचित्संतोषमूल आहार्य्यः। संमतिरत्रार्थे गोपाल शास्त्रिणः। संमतिरत्र शिवरामद्रविड़स्य । अत्रार्थे संमति मैघंकरेत्युपनामक नारायण शर्मणः। तन्नतु तांत्रिकत्वेनात्रतु वैदिकत्वेन। संमतिरत्रार्थे गाडगिलोपनामक रामकृष्णस्य॥ संमतिरत्रार्थे चिन्तामणि याज्ञिकस्य ॥ संमातिरस्मिन्नर्थे पद्मनिधेः पार्वतीयस्य ॥ संमतिरत्रार्थे धर्म्माधिकारि रामचंद्र शर्मणः ॥ संमतिरत्रार्थे गणपतिदीक्षितस्य । संमतिरत्रार्थे गोपालकृष्ण याज्ञिकस्य । संमतिरत्रार्थे नंदराम शर्मणः । अयमेव सिद्धांतोऽनुमतो हरिचरणस्य। संमातिरत्रार्थे रामदत्त शर्मणः। संमतिरत्रार्थे प्रयागदत्त शर्मणस्त्रिपाठिनः ॥ संमतिरत्र रामसुख शास्त्रिणः॥

संमतिरत्र रामजसन पंडितस्य । संमतिरत्र सामवेदिनो दीक्षितोपनामक कल्याणजीशर्मणः। संमतिरत्र सामवेदिनो द्विवेदिनोगंगाधर शर्मणः। संमतिरत्र भोलानाथस्यविदुषः । संमतिरत्रार्थे पांडेयोपनामक महादेवदत्त शर्मणः। संमतिरत्रार्थे गंगाराम त्रिपाठि शर्मणः। कूर्माचलनिवासिनः। संमतिरत्रार्थे पांडेयोपनामक लक्ष्मीकांतशर्मणः कूर्माचलवासिनः । संमतिरत्रार्थे पंतोपनामकस्य कूर्माचल वासिनः आदिकेशव शर्मणः। संमतिरत्रार्थे कूर्माचलवासीनः हरिरामशर्मणः । संमतिरत्रार्थे चिंतामणिशास्त्रिणः। संमतिरत्रार्थे गिरिजाशंकर पाठक प्रभृतयो ये श्रौत स्मार्त्त परापरायणा विद्वांसस्तेषामयमेव सिद्धांतः। ओ३म् शिवोजयतु। इतिरामानुजीयमतखंडनं समाप्तम् । स्वामिना गंगाधराश्रमेण लिखित मिदंव्यवस्था पत्रम्। शुभं भूयात् सर्व जगताम्॥श्रीः॥

श्लोका अन्येच ।

गता गीता नाशं निखिल निगमोऽप्यस्तमगम,--द्विलीनःस्मृत्यर्थोऽ खिलमपिपुराणं व्यपगतम्। इदानीं शठ्कोप प्रभृति वचनै मोंक्षपदवी, नजाने को हेतुःशिव शिव कलेरेष महिमा ॥१॥ वेदांती कृत नीच शूद्र वचसो वेद स्वयं कल्पनाः, पापिष्ठाः स्वमपित्रयीपथमपि प्रोद्वाहयंतः खलाः। साक्षाद्ब्रह्मणि शंकरे विदधति स्पर्द्धानिबद्धांमातिं, कृष्णे पौंड्रक वत्ततांनचरमांकिंते लभंते गतिम् ॥२॥ षट्कोपस्य चरित्रमत्र विदितं जातो यतो सावभूच्छूद्रः क्षुद्रतरःसुभद्रकुलजान् शिष्यानकार्षीच्छलात् तेऽन्यान् वंचयितुं प्रपंचरचनाव्यग्राःस्वयंवंचिता। वृन्दारण्यमवाप्य संचितचरैःस्वाघैर्गताः कुंचिताः ॥३॥ धर्म्माभासं विलोच्येमं विद्वद्भिः संहितैर्मिथः । व्यवस्थापत्रमेतद्धि विहितं वेद गुप्तये ॥४॥ ॐ शांतिः । शांतिः। शांतिः॥

श्लोकोंका अर्थः—गीता नष्ट हुआ तथा सब वेद वेदांत नष्ट हुये स्मृतियों के अर्थ गये पुराण भी पथिक हुये। इस समय षठ् कोपादि के वचनों से मोक्ष मिलने लगा शिव शिव धन्य कलिकाल तेरी महिमा ॥१॥ शूद्रो के वचन वेदांत माने गये अपनी स्वयं कल्पना वेद होगई दुष्ट लोग निज वचन को वेद मार्ग बना लिया जैसे पौण्ड्रिक राजा कृष्णजी को मानता था उसी प्रकार साक्षात् ब्रह्मशंकरजी में ईर्ष्या से भरी बुद्धि रखने लगे तो इनकी अन्तिम गति क्या होगी ॥२॥ षठ्कोप का चरित्र विदित ही है कि जैसा छोटे शूद्र के वंश में हुआ और सुभद्र कुल वालों को छलसें अपना शिष्य कर लिया शिष्य लोग भी दूसरों को ठगनें के अर्थ प्रपंच में व्यग्र रहे वृन्दावन में आकर कुछ लोगों को ठगा अंत में स्वयं निज पापसे संकुचित हुये ॥३॥ यह रामानुजीय मत (धर्माभास) देखाऊ धर्म को देखकर विद्वानों ने मिलकर वेद की रक्षार्थ यह व्यवस्था पत्र बनाया। ॐ शांतिः ३ ॥

T

—: सनातनधर्मरहस्य :—

મૂળ સંસ્કૃત અને ગુજરાતી ટીકા સાથે

જેમાં માનવ જીવનનો વિકાસ કર્ત્તા ધર્મશાસ્ત્ર, નીતિશાસ્ત્ર. વૈદકશાસ્ત્ર, વેદાન્તશાસ્ત્ર, ઉપનીષદ્, શાંકર વેદાન્ત. યોગવાસિષ્ઠ, અધ્યાત્મ રામાયણ, ભાગવત, ગીતા, પંચાયતનદેવસ્તોત્રોનો અદ્ભૂત સંગ્રહ સાર છે.

આ અપૂર્વ ગ્રંથ ગાયકવાડ સરકારના રાજ્યની સમસ્ત લાયબ્રેરી અને શાળા, ઇનામ માટે મંજુર કરેલ છે.

દેશના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાનોએ સર્વોત્તમ અભિપ્રાય દર્શાવ્યા છે. જીજ્ઞાસુ મુમુક્ષુ સજ્જન વર્ગને સન્માર્ગદર્શક, નીતિ, ભક્તિ, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, વર્ધક છે.

સોનેરી નામ. પાકુ સુંદર પુંઠું, સારા કાગલ, સરલ અને શુદ્ધ છપાઈવાળો આ ગ્રંથ સત્ય શોધક સત્સંગી સાધકને અભ્યુદય શ્રેયનો દાતા હોઈ બહુશ્રુત પાંડિત્યનો પોષક છે.

જ્ઞાનરસિક બંધુઓ અને બ્હેનો ગ્રાહક બની કર્ત્તાના શ્રમને સફલ કરશો.

એ પ્રમાણે બ્રહ્મર્ષિ ગ્રંથમાલાના સર્વગ્રંથો પ્રત્યેક ઘરમાં અવશ્ય સંગ્રહ કરવા યોગ્ય છે.

મૂલ્ય રા, પોષ્ટેજ વીપી. જુદું.

મળવાનું ઠેકાણું,

બ્રહ્મર્ષિ હરેરામ સુજ્ઞરામ પંડિત

તલીઆની પોળ—અમદાવાદ.

T

T